Busham
hal
Bangroo
P. Uire
554

सामायिक साहित्य-माला का आठवाँ पुष्प । सम्पादक-श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी'

बम्बई की डायरी

लेखक—

श्री परशुराम नौटियाल

Parshuram

प्रकाशक—

सामायिक साहित्य-सदन (रजि०),

लाहौर ।

प्रकाशक—

श्री उमाशंकर त्रिवेदी एम.ए.

व्यवस्थापक—सामयिक साहित्य-सदन,

चेम्बरलेन रोड, लाहौर।

जून सन १९४१

[illegible]

मुद्रक—

श्रीकृष्ण दीक्षित

बाम्बे मैशीन प्रेस,

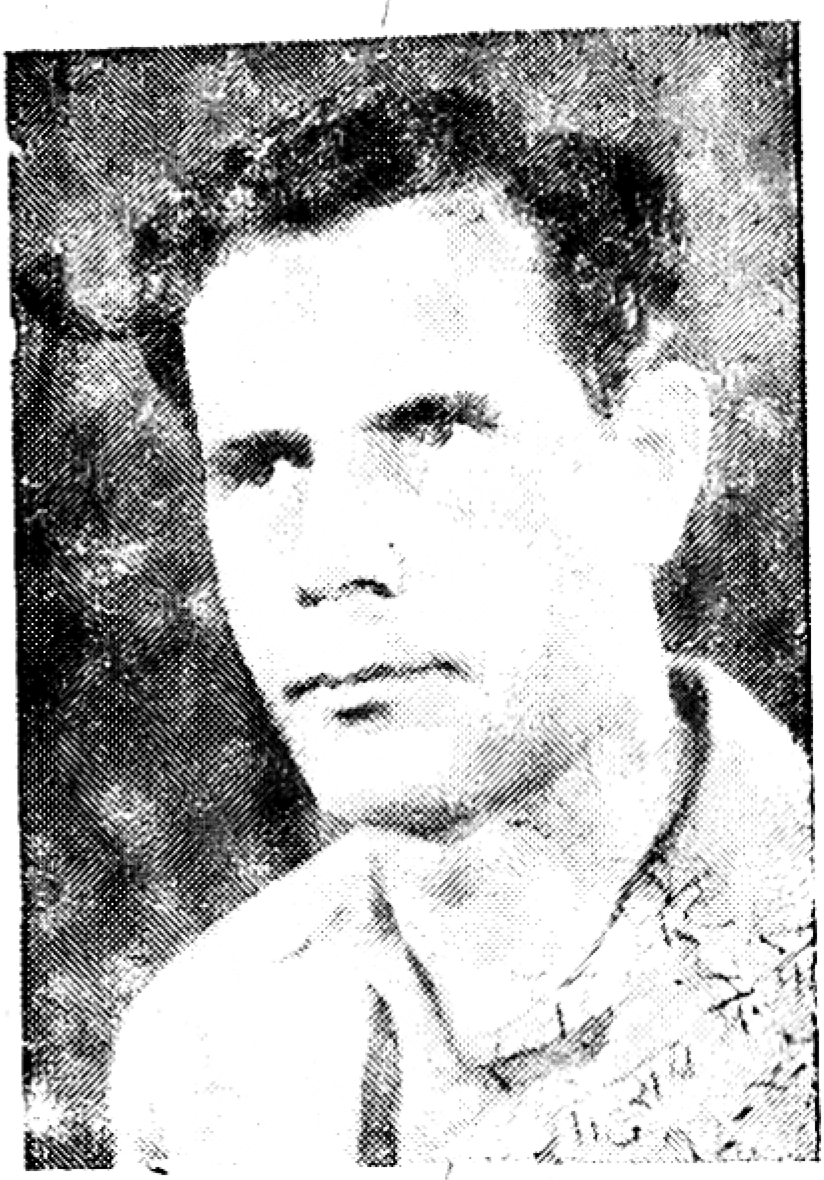
मोहनलाल रोड,

लाहौर।

बम्बई की डायरी



लेखक



समर्पण

जिनकी सरल-सज्जनता और समदर्शी महत्ता ने मेरे मन पर हमेशा के लिये अपनी छाप लगादी है, जिन्होंने अपने दिल और दिमाग की मेहनत से भारतीय सिनेमा-क्षेत्र में अपनी धाक जमा ली है, जो अपनी बड़ी से बड़ी कामयाबी पर भी अभिमान नहीं करते; बल्कि सदा यही कहते हैं कि मेरी कामयाबी अभी आगे आने वाली है, उन्हीं सफल किन्तु असन्तुष्ट कलाकार — 'मिनर्वा मूवीटोन' के सर्वेसर्वा श्री सोहराब मेहरवान जी मोदी के कर-कमलों में अपनी यह तुच्छ कृति सादर समर्पित करता हूँ।

फूल कुछ मैंने चुने हैं, उनके दामन के लिए।

परशुराम नौटियाल

अपनी बात

मेरी "बम्बई की डायरी" नाम से एक लेखमाला कुछ महीनों तक 'विचार' कलकत्ता के पृष्ठों में छपती रही है। पाठकों ने उसका स्वागत किया था। कुछ ऐसे व्यक्तियों ने भी इसकी प्रशंसा की थी जिनके एक शब्द को भी मैं अपने लिये बहुत कुछ समझता हूँ, और इसीलिये यह पुस्तक के रूप में अनेक परिवर्तनों के साथ आपके सामने है।

पहले पहल जब इसे लिखा गया था तो इसमें अनेक बातों का केवल निर्देश मात्र था किन्तु पुस्तक रूप में छापने में मैंने उनका पूरा ब्योरा देना ही उचित समझा और यही प्रयास भी किया गया है इसीलिए इसे पढ़ते हुए ऐसा लगेगा कि जैसे कहानी अपने मूल प्रसंग को छोड़ कर कहीं और जा रही है। उस वक्त जिन चित्रों का श्रीगणेश भी न हुआ था इसमें उनकी आलोचना तक दी गई है जिसे एक दृष्टि से अप्रासङ्गिक नहीं कहा जा सकता।

इसे आप यदि कहानी के रूप में पढ़ें तो यह कहानी है। सिनेमा के शौकीन होकर पढ़ें तो यह सिनेमा के प्रति मेरे दस वर्षों के अनुभव का इम्प्रेशन है। सिनेमा की दुनिया की कुछ थोड़ी-सी जानकारी आपको इसमें मिलेगी। लेकिन कहानी से चिपका हुआ "मैं" एक दर्शक हूँ, कहानी का हीरो नहीं। क्योंकि इसमें सच के

साथ बहुत कुछ कल्पना से काम लिया गया है, और इसमें भेद क्या है यह बताने की आवश्यकता नहीं। और यदि मैं ऐसा न कहूँगा तो मेरे साहित्यिक मित्र मुझसे यह कहते भी न चूकेंगे—"म्याँ गोपियों में कृष्ण बने हुए थे ?" और मेरे पास इसका कोई जवाब न होगा। यह तो अपनी-अपनी किस्मत है !

अन्त में मुझे एक बात निवेदन कर देनी है—और वह यह कि चूँकि इस पुस्तक में फिल्मी दुनिया के प्रायः सभी पात्र सच्चे और जीवित हैं और उस समय की मेरी दिमाग़ी भावना से उनके सच्चे-स्वरूप का चित्रण न हो सका हो; तो वे मुझे क्षमा करदें।

मुझे उन मित्रों और उन श्रद्धेय व्यक्तियों को भी धन्यवाद देना होगा, जिनकी प्रेरणा के फलस्वरूप मुझे आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

बम्बई १४ अप्रैल ४४। परशुराम नौटियाल

बम्बई की ओर

मुझे बम्बई जाना था। इसकी तैयारी में एक महीना पहले कर चुका था। पूजा की छुट्टियों में सोचा था कन्सेशन टिकिट मिलेगा, किन्तु ऐसा न हुआ और मैंने ४५ दिन का रिटर्न टिकिट जब खरीदा तो मालूम हुआ कि कन्सेशन कुछ भी नहीं मिला। और मैं अपने एक मित्र डा० शर्मा के साथ ८ अक्टूबर १६३६ को हावड़ा स्टेशन पर पहुँचा। किंतु दैवयोग से मुझे उस दिन नहीं जाना था, मैं हावड़ा स्टेशन पर एकाएक बेहोश हो गया, गाड़ी में बैठना दूभर हो गया—उसके बदले मेयो हस्पताल की चारपाई सम्भालनी पड़ी और दूसरे दिन मैं स्वस्थ हो सका।

आखिर हम १० ता० को रवाना हुए।

गाड़ी "डेहरी ऑन सोन" पर पहुँची, कुछ लोग एक साथ उतर पड़े और कम्पार्टमेन्ट अब कुछ हलका हो गया। यात्री आदमी काफ़ी आराम से बैठे थे, इसी वक्त कोई स्टेशन आया। और गाड़ी

खड़ी हुई ही थी कि बिहार की बहुत-सी स्नानार्थी स्त्रियों का एक दल आकर उस गाड़ी में बैठा, उनके साथ कुछ पुरुष भी थे। चूँकि पटना आनेवाला था, इसलिये मैंने बिस्तर बाँध कर तैयार कर लिया था।

गाड़ी चलते ही एक वृद्धा स्त्री ने अपने हाथ के कड़े से अपनी बहू को खूब पीटना आरम्भ किया। वह कड़े से उसके सिर पर ज़ोर-ज़ोर से मार रही थी—बात यह थी कि गोद में बच्चे को लिये, सिर पर गठरी थामे, बहू के हाथ से गाड़ी में चढ़ते समय एक छोटी-सी सन्दूकची का कड़ा टूट गया था और सन्दूकची भी ज़मीन पर गिर पड़ी थी। सास ने उसे उठाया था और गाड़ी में रखा था; यह मार उसी की सज़ा थी।

मैंने पहले तो आश्चर्य से इस घटना को देखा और फिर एक व्यक्ति से पूछा—"क्या बात है?" जवाब मिला—"सास बहू को डाँट रही है!"

हमारे डिब्बे में बहुत से खद्दर धारी व्यक्ति भी बैठे थे, टोपियाँ तो प्रायः सभी की खद्दर की थीं, बहू की इस मरम्मत को सभी ने देखा था, किन्तु किसी ने इस घटना पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं समझी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतनी मार खाने के बाद भी बहू की आँखों में एक भी आँसू नहीं था और न इतने व्यक्तियों के सामने इस अपमान के लिए उसे कुछ क्षोभ ही था। मैंने गौर से उस युवती के मुख पर देखा। झुलसा और काला पड़ा मुख था, स्पष्ट ज्ञात होता था कि मार खाते-खाते उसको इतना अधिक

अभ्यास हो गया है कि यह बात उसके लिये कोई महत्व नहीं रखती। आज उसकी यह दशा है कि वह अपनी मृत्यु की सूचक स्वयं बनी बैठी है, अधिक से अधिक दो महीने की ही ज़िन्दगी है। बच्चे को दूध पिलाते-पिलाते वह बगल वाली एक अन्य स्त्री के कानों में शायद अपनी सास के विरुद्ध कुछ कहने लगी थी कि सास ने गालियों के साथ पुनः उसी तरह उसकी खबर लेनी शुरू कर दी।

मैंने देखा किसी ने इस बार भी कुछ नहीं कहा, बुढ़िया मनमानी करती जा रही थी। मेरा गुस्सा आसमान पर चढ़ गया था। ज़ोर से चिल्लाकर और उठकर मैंने कहा—"क्या है बुढ़िया?"

मेरा चिल्लाकर उठना था कि सारे कम्पार्टमेन्ट में सन्नाटा छा गया। सभी की दृष्टि मेरी ओर थी। मैंने कहा—"क्यों मारती है उसको?"

इसी वक्त वृद्धा का पुत्र, अर्थात् उस लड़की का पति मेरे पास आकर बोला—"आप बैठिये साहब, घर का मामला है।"

मैंने कहा—"घर का मामला है तो घर में करें। यहाँ घर नहीं, जंगल भी नहीं, इतने आदमियों के बीच है—"वह ऐसा कदापि नहीं कर सकती।"

मेरा इतना कहना था कि जिन व्यक्तियों को मैं भला समझ रहा था, वे बोले—"अरे साहब! आप क्यों उत्तेजित हो गये, यहाँ ऐसे ही चलता है, आप शान्त होकर बैठ जाइये।"

और मैंने देखा डा० शर्मा भी मेरी बाँह पकड़कर मुझे बिठाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मैंने कहा—"मुझे आश्चर्य होता है, आप लोगों पर और आप के इस देश पर जहाँ अभी तक इस प्रकार के अत्याचारों को सराहा जाता है।"

वृद्धा का पुत्र मेरे पास ही खड़ा था, उसने कहा—"आप बैठ जाइये, कोई बात नहीं है।" और बिहारी भाषा में उसने अपनी माता से शायद यह कहा—"इतने आदमियों के सामने ऐसा क्यों करती हो ?"

वृद्धा का इतना सुनना था कि उसने गिन-गिनकर पहले तो लड़के को गालियाँ दीं और पीछे ज़ोर-ज़ोर से स्वयं रोने लग गई। रोते-रोते भी न जाने क्या-क्या गालियाँ बहू को भी और बेटे को भी देने लगी।

कुछ ही देर बाद वृद्धा वृद्धाओं के साथ, बहू बहुओं के साथ और अन्य सभी अपने-अपने साथियों के साथ बातों में लग गये। यदि कोई गहरी चिन्ता में था तो वह मैं था कि सोचते-सोचते मुझे स्वयं आँसू आ गये। उस अभागी बहू के भाग्य पर मैं जितना सोचता था उतना ही मुझे अँधेरा नज़र आता था, जिसे गाड़ी के डिब्बे में भी पीटने से नहीं छोड़ा गया था; घर पर उसका क्या हाल होगा। और उस देश पर मुझे और भी तरस आता था जिस देश की वह बहू थी।

गाड़ी किसी तरह रात के १० बजे पटना जंक्शनपर पहुँची।

हम लोग स्टेशन के पास ही एक मारवाड़ी भोजनालय में रात को रहे। चूँकि डा० शर्मा कुछ इसी किस्म के आदमी थे इस-

लिये किसी अपटुडेट होटल में टिकना हम लोगों के लिए मुश्किल हो गया।

दूसरे दिन स्नानादि से निवृत होकर मैंने खाने के लिये कहा, डा० शर्मा कहीं गये हुए थे, किन्तु उस पवित्र मारवाड़ी बासे वालों ने मुझे पूरे दो घण्टे के बाद खाना खिलाया। सभ्यता के लिहाज़ से मैं ज़्यादा हड़बड़ाता नहीं था और सभ्यता की रक्षा करनी मुझे इसलिये आवश्यक हो गई थी कि मेरे कमरे के बग़ल में ही कोई सुन्दरी युवती अपने शृंगार में थी। भूख के गुस्से में मैं उसकी आँखों से आँखें मिला लेता, तो मेरा दिल तृप्त हो जाता! वह मुस्का जाती और मेरी भूख ख़त्म हो जाती। मैं यह सोचने लगा कि बासे वाले खाना लाने में जितनी भी देर करें मेरे पक्ष में अच्छा होगा। मगर बासे का आदमी खाना लेकर आया और मैंने उससे पूछा-"ये पड़ोसी क्या यहाँ ठहरे हुए हैं, या यहीं रहते हैं?

बाय मुस्करा कर बोला-"यहीं रहते हैं बाबूजी-बुला दूँ उन्हें?"

मैंने कहा-"अरे नहीं नहीं, बुलाने का क्या मतलब?"

"वे आयेंगे, भले आदमी हैं! बुलाता हूँ।" कहकर वह चला गया। मैं पीछे से बुलाता ही रह गया, मगर वह आया नहीं और वहीं से किचन की तरफ़ चला गया। मैंने समझा वह दिल्लगी कर के गया है पर देखता हूँ देवी जी साक्षात शृङ्गार की मूर्ति बनकर वहाँ पर उपस्थित हो गई—"नमस्ते"?

मैं हक्का-बक्का उनके मुख पर देखने लगा। हाथ का ग्रास हाथ में ही रहा, न मैं बोल सका और न खा सका। मगर मुझे एक तरकीब सूझी; कहा-"कहिये ?"

आप ने बुलाया था ?"

"जी नहीं—मैं क्यों बुलाता ?

"वह छोकरा बोल गया—बड़ा बदतमीज़ है।"

"जी है तो बड़ा बदतमीज़, उसे मैं ठीक करूँगा।"

"हाँ, आप को उसकी खबर लेनी ही चाहिये, आप यहाँ आज ही आये हैं ?"

"जी।"

"कहाँ से तशरीफ़ लाये हैं ?"

"जी कलकत्ते से आया हूँ।"

"यहाँ कुछ काम से आये होंगे ?"

"जी योंही सैर की ग़रज से।"

"क्या काम करते हैं ?" कहकर देवी जी कमरे के भीतर आ पहुँचीं।

"जी मैं फ़िल्मों से सम्बन्ध रखता हूँ।" मैं चारपाई पर बैठ गया और कुर्सी उनके लिये छोड़ दी। देवी जी जैसे आश्चर्य में डूब कर मेरी ओर हैरानी से देखती हुई चारपाई पर ही बैठीं और बोलीं—

"फिल्मों से ?......? आप फिल्म कम्पनी में काम करते हैं ?"

"जी हाँ।"

"एक्टरी ?—आप का नाम ?"

"जी, एक्टरी नहीं करता, इसलिए नाम तो आपने कभी सुना ही न होगा। बताने की ज़रूरत ही नहीं।"

"जी देखा आपको ज़रूर है किसी फिल्म में !"

"जी नहीं, आपका खयाल ग़लत है, आपने मुझे नहीं देखा।"

"तो आप वहाँ क्या काम करते हैं ?"

"जी योंही, कुछ नहीं।" और मैं खाने की थाली पर देखने लगा।

"आप वहाँ के मैनेजर होंगे ?"

"जी नहीं।"

"तो आप बताना नहीं चाहते। मगर आपने खाना क्यों छोड दिया आप खाइये—मैं चली जाऊँ ?"

"नहीं-नहीं बैठिये. आइये आप भी खाइये।"

"मैं तो खा चुकी हूँ—आप खाइये।"

मैंने एक ग्रास ही खाया था कि मिर्चों के मारे दिमाग़ तक चोट पहुँची "ओ बाप रे !" मेरे मुँह से निकला।

चौंककर देवी जी ने कहा—"क्यों, क्या हुआ ?"

"ये लोग खाना खिलाते हैं या ज़हर ?"

"क्यों मिर्चें हैं।"

"बहुत ज़्यादा।" और मैंने थाली उठाकर चारपाई के नीचे रख दी।

"तो अब क्या खायेंगे ?"

"कुछ नहीं—पेट भर गया ।"

वह हँस पड़ीं और चटपट बाहर निकल कर अपने कमरे में चली गई। मैंने समझा अब चली गई हैं, मैं कपड़े पहनने का इन्तजाम करने लगा कि इसी वक्त एक रिकाबी में देवी जी मिठाई लेकर आईं—

"लीजिए, इसमें मिर्चें नहीं हैं ।"

"अरे आपने क्यों कष्ट किया ?"

"कष्ट क्या है, खाइये ।"

होटल का बाय इसी वक्त कुछ साग भाजी लेकर आया, बोला—क्यों बाबू जी ?"

देवी जी ने उत्तर दिया—"तुम लोग खाना थोड़ ही खिलाते हो, भले आदमियों को भूखों मारते हो—मिर्चें कितनी ज़्यादा हैं, खा नहीं सके बेचारे।"

होटल का बाय बड़ा चलता-पुरजा था, बोला—"मिर्चें न डालते तो मिठाई खाने को कैसे मिलती।"

इस उत्तर पर मुझे भी हँसी आ गई। देवी जी ने पूछा—"क्यों रे तू तो कहता था कि बुलाया है ?"

"हाँ, बाबू जी ने बुलाया था आपको !"

देवी जी मेरी तरफ़ देखने लगीं। मुझे हैरानी हुई। "कब बुलाया था रे—झूठ बोलता है ?" मैंने डाँट कर कहा।

'जी, बाबू जी आपने नहीं कहा था। ये कौन हैं ?"

"तो इसी का मतलब है बुलाना।"

और वह हँसता हुआ एवं हम लोगों की तरफ़ देखता हुआ किचन की ओर भाग कर चला गया।

मैं मिठाई खा रहा था, देवी जी ने कहा—"तो आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया—क्या आप नहीं बताना चाहते कि आप क्या काम करते हैं?"

मैंने कहा—"न बताने की तो कोई बात नहीं, बात कुछ बताने की हो तब तो बताऊँ?"

वह बोलीं—आपकी मर्ज़ी रहो, न बताइये।"

मैंने कहा—"आप तो नाराज़ हो गई हैं, मैं योंही लिखने-पढ़ने का कुछ काम करता हूँ, मगर आप क्या इसी होटल में रहती हैं?"

वह बोलीं—"जी; इसी होटल में आप जैसे महापुरुषों को मिठाई खिलाती रहती हूँ।"

हँसते-हँसते मैं यकायक रुका—"मिठाई खिलाती रहती हूँ? आपके साथ और कौन है?"

"जी कोई नहीं है, अकेली हूँ"

"और आपकी गुज़र-बसर?"

"योंही आप लोगों की दया पर!"

मैंने ग़ौर से देवी जी के चेहरे पर देखा, उनकी शक्ल में एक भी ऐसा ख़म न था, जिससे प्रतीत होता हो कि वह कुछ वासना-भोगियों की दया पर जीवित हैं।

"आपकी मिठाई के लिये शुक्रिया, अब मैं जाता हूँ।" मैंने हाथ धोकर कोट पहना और बाहर आया ही था कि देखा डा० शर्मा आ पहुँचे हैं, मैं चाहता था कि उस दिन भी वहीं रहता। किंतु साथी डा० शर्मा बड़े हठीले थे। उनका घर छपरा के पास ही एक गाँव में था—वे मुझे वहाँ ले जाना चाहते थे—रात को स्टीमर के पास पहुँचे। स्टीमर घाट बड़ा सुहावना लगा। स्टीमर के आने में अभी एक घण्टे की देरी थी, नाना प्रकार के आदमियों से बातचीत करने का मौका मिला। अन्त में रात को १ बजे स्टीमर आया और हम उसमें बैठे। स्टीमर की सवारी मैं कई बार कर चुका था, फिर भी मुझे यहाँ पर अच्छा लग रहा था, स्टीमर १ घण्टे तक चलता रहा और अन्त में हम बी० एन० डबल्यू रेलवे की एक छोटी गाड़ी में बैठे, वहाँ से हमें छपरा जाना था। गाड़ी में हम सो गये और जब सवेरा हुआ तो हम छपरा में थे। छपरा से हम मशरक गये और वहाँ से गलीमापुर ग्राम में।

यही गलीमापुर ग्राम डा० शर्मा का था जहाँ ले जाने के लिए वे मुझे पूरे तीन महीने से कह रहे थे। मशरक स्टेशन से यह ग्राम ६ मील है, किन्तु इसी ६ मील ने हमें इतना व्यथित कर दिया कि मैं सोचने लगा आख़िर मैं यहाँ क्यों आया?

रास्ता ऊँचा-नीचा, हमारी टमटम उस उबड़-खाबड़ रास्ते पर से हमें ले जा रही थी। ऊपर से तेज धूप सर को तपा रही थी—हमारी स्थिति बड़ी ही कारुणिक थी। ख़ैर, किसी तरह हम गलीमापुर ग्राम में पहुँचे।

गलीमापुर ग्राम था छोटा-सा किन्तु इतना सुहावना और स्वच्छ था कि मैं तो देख कर चकरा गया, सारी थकावट एक दम दूर हो गई। डा० शर्मा ने मुझे अपने परिवार से परिचित कराया, मालूम हुआ जैसे वे लोग मुझे पहले से ही जानते हों।

डा० शर्मा के बड़े भाई श्री सीताराम शर्मा से परिचित होते ही मैं उनसे इस तरह घुल-मिल गया जैसे वे मेरे ही बड़े भाई हों। ग्राम की सफ़ाई और स्वच्छता का कारण यही था कि भाई सीताराम जी एक सुधार-प्रिय व्यक्ति हैं। वे जमींदार हैं, किन्तु जमींदारों का एक भी भाव उनमें मैंने नहीं देखा। अपने हर एक असामी से वे इस प्रकार मिलते, जैसे किसी अपने ही से मिल रहे हों। आसाम के डिब्रूगढ़ में और यहाँ भी उनकी विशाल ज़मींदारी है, किंतु इतना साधारण वेश उनका था कि कोई उन्हें ज़मींदारी शान वाला न कह सकता था। ३० वर्ष की उम्र है, हर काम में उत्साह भरा है। पग-पग पर सुधार की भावना। सारा घर खद्दरमय। रात्रि को ग्राम के कुछ व्यक्ति आकर उनसे शिक्षा पाते हैं। पढ़ते लिखते और चले जाते हैं, उनका यह क्रम कई वर्षों से चला आता है। और यही कारण था कि मैं उनसे इतनी जल्दी घुल-मिल गया।

तीन दिन मैं गलीमापुर ग्राम में रहा। भाई सीताराम जी ने मुझे वहाँ का सब-कुछ दिखाया। मैंने ग्राम देखा, ग्राम का कोना-कोना देखा, खेत देखे, इनार देखे, खेत में काम करने वाले देखे और उनके काम करने का ढङ्ग देखा। सीधा-सादा जीवन देखा, सीधी-सादी बातें देखीं और सबसे बड़ी बात जो देखी वह यह थी, कि

भोजन की स्वच्छता। शुद्ध स्वादिष्ट भोजन से मैं अपने को ३ दिन में ही काफ़ी हृष्ट-पुष्ट अनुभव करने लगा।

वहाँ उन्होंने मुझे बड़े-बड़े व्यक्तियों से भी परिचित कराया। एक दिन वहाँ फुटबाल का मैच भी देखा।

भाई सीताराम जी की इच्छा थी कि वे भी बम्बई एक बार देख लें। और इसी ख़याल से तीसरे दिन सुबह ५ बजे हम दोनों वहाँ से विदा हुए। डा० शर्मा वहीं रह गये और भाई सीताराम जी मेरे साथ चल पड़े। ७ बजे हमें छपरा के लिये गाड़ी मिली और ९ बजे करीब हम छपरा पहुँचे। वहाँ से हमें बनारस जाना था, किन्तु मालूम हुआ कि छपरा से बनारस कोई भी एक्सप्रेस ट्रेन नहीं जाती। सभी पैसेंजरें जाती हैं और अब रात को ७ बजे पैसेंजर जायगी। उस सारे दिन के लिये हमें छपरा ही ठहर जाना पड़ा।

छपरा स्टेशन पर हमें ७ बजे सन्ध्या तक ठहरना था, इसलिये हमने सोचा किसी होटल में डेरा डालें और स्टेशन के पास वाले होटल में चले गए। सुविधाजनक सभी बातें हमें मिल गईं। खाना भी अच्छा ही मिला। चार बजे के समय वहाँ पर कई मित्र जुट गये। गाना हुआ, बातें हुईं, ग्रामोफ़ोन बजाया गया। होटल के पिछवाड़े एक खेत था, पास पड़ोस की बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ पर एकत्र थीं। उनमें एक चिथड़ोंवाली लड़की थी जो सब से अधिक सुन्दर थी। उमर रही होगी कोई तेरह वर्ष। हमारे साथ एक वृद्ध महाशय थे, उन्होंने उस लड़की को खिड़की के पास बुलाया—"अरी मुनियाँ यहाँ आ तो।"

वह खिड़की के एक ओर खड़ी हो गई।

वृद्ध महोदय बोले—

"जायगी वायस्कोप में काम करने—ये वाबू आये हैं ?"

मुनियाँ एक नज़र देख वहाँ से भाग खड़ी हुई।

सभी सज्जन ज़ोर से हँस पड़े। आपस में आलोचना करने लगे—'चली जाय तो इसका बेड़ा पार हो जाय।'

एक महाशय डाक्टर थे, बोले—क्यों साब ! इस लड़की को वायस्कोप में काम मिल सकता है ?

मैंने कहा—"क्या मालूम ?"

इतनी देर में देखा वह फिर आकर खिड़की के सहारे खड़ी देख रही है।

वृद्ध महाशय बोले—"साब ! इस मुनियाँ को तो ज़रूर अपने साथ लेते जाइये, इसे काम दे दीजियेगा।"

मैंने उनकी बात रखने को कह दिया—"अच्छा साहब, लेते जायँगे।"

लड़की को शायद विश्वास हो गया कि ये लोग ठीक कह रहे हैं, ये मुझे ज़रूर लेते जायँगे।"

और इसीलिये सन्ध्या को सात बजे जब हम स्टेशन की ओर जा रहे थे, तो एक मैली-मैली, किन्तु पहले से अच्छी साड़ी पहने वह लड़की स्टेशन से वाहर मिली। उसने हमें देखा, हमने उसे। शायद हम लोगों की दिल्लगी ने उस पर आघात किया।

उसने समझा होगा कितने क्रूर होते हैं ये शहरी लोग, और मैं गाड़ी में बैठे-बैठे सोच रहा था कितनी भोली होती हैं ये ग्राम्य बालायें।

रात को एक बजे हमारी गाड़ी बलिया स्टेशन पर पहुँची। इस बलिया को देखने की बहुत दिनों से ख्वाहिश थी—इस बलिया के लिये बहुत दिन पहले हम लोगों में कुछ वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ था, इसलिये जिस समय गाड़ी बलिया पहुँची, हमने समझा हम एक तीर्थ-स्थान पर आ लगे हैं। गाड़ी यहाँ पर एक घण्टे से ज्यादा खड़ी रहती है। मैंने चारों ओर चक्कर लगाया, खूब बातें कीं, यदि दिन का समय होता तो फ़ोटो उतारता, किन्तु रात की लाचारी। इसके बाद तीन बजे हमारी गाड़ी बनारस कैण्ट पर पहुँची।

तीन बजे रात को धर्मशाला का दर्वाज़ा झाँका पर धर्मशाला के महागुरुओं ने ५ बजे से एक मिनट पहले उसका दर्वाज़ा नहीं खोला। मैं और भाई सीताराम तो थे ही, परन्तु मैंने देखा धर्मशाला के बाहर बहुत से स्त्री-पुरुष तीर्थयात्री रात के एक बजे से दर्वा..ा खुलवाना चाहते हैं, चिल्ला-चिल्लाकर दर्बान को बुला रहे हैं किन्तु अन्दर से कोई आवाज़ नहीं आती, जैसे सारा मकान बहरा हो। ख़ैर, किसी तरह सवेरा हुआ और हम लोग अपने गन्तव्य स्थान हिन्दू यूनिवर्सिटी पहुँचे।

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर शशिशेखर जी गैरोला के घर पर हम लोग ठहरे हुए थे। प्रोफ़ेसर साहेब वहाँ के इंजीनियरिंग कालेज के हेड आफ़ दि डिपार्टमेण्ट हैं। साथ ही यूनिवर्सिटी `निंग कोर्स के कैप्टिन हैं। हम लोगों के रिश्तेदार होने पर

भी अभी तक कभी आप से साक्षात करने का मौका न मिला था, और उसका कारण यह था कि आप बचपन में ही विलायत चले गये थे और अपनी पूरी पढ़ाई समाप्त करने के बाद भारत लौटे थे।

प्रोफ़ेसर गैरोला को मिलकर हमें जहाँ अत्यन्त आनन्द हुआ, वहाँ उनके रहन-सहन और व्यवहार के ढङ्ग में ज़रा भी विलायतीपन न देखकर हमें आश्चर्य भी हुआ। हज़ारों लाखों कैरेक्टरों की कल्पना दिमाग़ में रहते हुए भी उन्हें मैंने अपने ढङ्ग का अलग ही कैरेक्टर चुना। सुगठित फ़ुर्तीला बदन, हर काम में जरा भर आलस नहीं, एक साथ कई काम करना, एक साथ कइयों से बातें करना, एक ही समय कई विषयों पर वाद-विवाद करना—और अत्यन्त चंचल प्रकृति, बच्चों जैसी विशुद्ध आत्मा, एक क्षण में ही मुझे उनकी प्रकृति का पता लग गया। हँसोड़ स्वभाव होने पर भी, पेशानी पर किसी विचार में एक शिकन पड़ी हुई, किसी विषय को लेकर बात करते हुए और हाथ में कोई और ही काम हो रहा—एक विचित्र व्यक्ति को देख कर मुझे तो कम से कम ऐसा अनुभव हुआ, कि मैं आज धन्य हुआ हूँ।

मैं चूँकि सिनेमा का व्यक्ति था, इसलिये मुझ से बात करने में सिनेमा का विषय आना आवश्यकीय हो जाता है, किन्तु प्रोफ़ेसर गैरोला इस विषय में इतने कोरे थे कि मुझे आश्चर्य हुआ। वे सिर्फ़ मुझे यह बता सके कि 'ज़िन्दगी' चित्र मुझे बेहद पसन्द आया—यद्यपि वे करीब-करीब बनारस आने वाले सभी चित्रों को

देख लिया करते हैं पर देखने के बाद एक दम यह भूल ही जाया करते हैं कि क्या देखा था।

दूसरे दिन हमें काशीनाथ जी 'भ्रमर' उपनाम बेधड़क बनारसी से मिलना था, और बड़ी भारी तलाश के बाद हमने उनका घर खोज निकाला। कुछेक विषयों पर बात चीत करके हमने पुनः मिलने का वचन देकर विदा ली। किन्तु दुर्भाग्य की बात फिर हम उनसे न मिल सके।

उनके घर से हम चौक के पास ही आये थे कि हमारे एक परिचित बन्धु दूर से ही चिल्ला कर बोले,—अरे साहब! आप यहाँ कहाँ?"

अपने आने का कारण बताया। हम उन मित्र को पहचान रहे थे, किन्तु दुख हो रहा था कि अच्छी तरह न जान पाये कि उन्हें कहाँ देखा और कब देखा, वे बोले—"यहीं पर मेरा घर है, तशरीफ़ ले चलिये—ज़रा चाय-नाश्ता।"

मैंने कोई आपत्ति नहीं की, एक छोटे से कमरे में हम लोग प्रविष्ट हुये, देखा साफ़ सुथरा कमरा, एक युवती बैठी कपड़े पर बेल-बूटा काढ़ रही है। उन्हें देखते ही मुझे याद हो आई, मैंने कहा—

"अरे साहब! मैं अभी तक आप को पहचान न पाया था, अब पहचाना"

वे महाशय रसिकता भरे स्वर में बोले "अरे महाराज! हमें आप भला क्यों पहचानने लगे, पहचानने वालों को तो आज २ वर्ष से भी नहीं भूले।"

मुझे उनकी रसिकता अच्छी नहीं लगी, इसलिये मैंने विशेष कुछ नहीं कहा, सिर्फ़ उन तीन वर्षों का इतिहास गुनने लगा, कि तीन वर्ष पहले एक दिन यकायक एक फ़िल्म-डिस्ट्रीब्यूटर से भेंट हुई थी और वे मुझे अपनी मोटर में बिठा कर उक्त युवती के यहाँ ले गये थे और परिचय के बाद बोले थे, "इन्हें कहीं फ़िल्मों में लगा दीजिये।"

और जिस दिन फ़िल्मों में उन्हें भर्ती कराने का मौका आया उस दिन उक्त युवती फ़िल्म-सर्किल में जाते हुए हिचकिचाई। उन्हें फ़िल्मों में जाने से पहले ही कटु अनुभव हो चुका था, शायद उन्होंने समस्त फ़िल्म-जगत् को ही उसी आँखों से देखा। मुझे उस दिन दुख हुआ था, किन्तु युवती सम्भवतया मेरे उस दुख को भी अनुभव कर पाई थी, इसलिये उन्होंने अपने हृदय से क्षमा चाही थी और कहा था मेरी छोटी बहन को काम दिला दीजिये। और वही हुआ भी, किंतु उस वक्त मुझे इस बात का और भी दुख हुआ कि जिसे मैंने काम दिलाया था, वह दो-एक चित्रों में अच्छा काम करके स्वर्ग-वासी हो गई थी।

मैंने उनसे पूछा—"आप यहाँ कब से रहती हैं ?"

वह बोलीं—"जब से भाग्य ने यहाँ लाकर पटका,—आप तो अभी वहीं हैं ?"

मैंने देखा, वे मित्र महाशय वहाँ पर नहीं हैं, चाय बनाने का आर्डर देकर कुछ लाने बाज़ार गये हैं। मौका पाकर पूछा मैंने—

"माफ़ करना, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ—इनके साथ

आप कैसे रहती हैं, ये तो वहाँ डिस्ट्रीब्यूटर साहब के मुसाहिब थे न?"

वह बोलीं—"उस वक्त आप का कहना मान कर फ़िल्मों में चली गई होती तो इस वक्त इतने दुख में तो नहीं रहती, यहाँ भी जब यही काम करना है तो वहाँ ही अच्छा था।"

मैं हैरान हो गया था। बात क्या है!—और उनसे सभी बातें पूछीं और उन्होंने जो कुछ मुझे उन साहब के बारे में बताया, उसका सार यह है।

"इस राक्षस ने मुझे जैसा धोखा दिया, वैसा धोखा शायद आदमी आदमी को नहीं दे सकता। इसी के कहने से मैंने उस वक्त फ़िल्मों में जाने से इन्कार कर दिया था। इसी ने कहा था कि वहाँ जाकर हज़ारों का मन पतियाना पड़ता है और खुशामद अलग करनी पड़ती है। इसने ऐसी-ऐसी बातें फ़िल्म-लाईन के विरुद्ध कहीं कि मैं उस वक्त आपको भी अपना दुश्मन समझने लगी और इस को भगवान समझ कर इसकी पूजा करने लगी। इसने मुझे अपनी सम्पत्ति और कीर्ति का ऐसा सब्ज़बाग़ दिखाया कि मैं सोचने लगी, इस रास्ते को छोड़कर यदि मैं गृहस्थ में प्रविष्ट हो सकूँ तो कितना अच्छा हो। मेरी अभागी बहन मुझे बार बार इससे मिलने-जुलने से रोका करती थी, किन्तु इस राक्षस ने उसी को आपके ज़रिये फ़िल्मों में भर्ती करवा कर उसे अपने रास्ते से दूर हटाया।

जिस दिन मैं इसके साथ हावड़ा स्टेशन पर आई, उसी दिन इसने मेरे पास जितना नक़दी और गहना था सब-कुछ अपने हवाले

कर लिया था। मैं भला क्या समझती, मैं तो अपनी ज़िन्दगी ही इस के हवाले कर चुकी थी, और यह कहता था ८० हज़ार सालाना आमदनी की मेरी ज़मींदारी है, अपनी मोटर, अपनी गाड़ी, अपने नौकर-चाकरों से घर भरा है। मगर सब धोखा, सब धोखा! यह मुझे मेरे पैसे से यहाँ लाया और मेरे गहने बेचकर इसने शराब पी डाली और आज......आज।" यह कहते-कहते रो पड़ी—मगर शायद वह समझ गई कि समय बहुत कम है और बता देना सभी कुछ है, इस लिये उसने आँसुओं को पीकर भी कहा—"आज मुझे बाज़ार में बिठा कर यह मेरी अस्मत की कमाई से पेट पाल रहा है। मगर झूठ बोलना इसका अभी भी जारी है। अभी भी कहता है मुझे अपने घर ले जायगा।"

सुनते ही मेरा तो सिर चकरा गया। लोभ और क्षोभ के मारे मेरा शरीर काँपने लगा, किन्तु इस प्रवास में मैं लाचार था, क्या करता? वह और भी बोली—"आज ३ वर्ष से मैं जिस घोर नरक की यातना भोग रही हूँ उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। आप जैसे देवता की दया को ठुकरा कर मैंने इस राक्षस की निष्ठुरता को अपने हाथों अपनाया, यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?" कह कर वह चुप हो गई। मैं सोचने लगा। क्या-क्या सोच गया याद नहीं।

मेरे क्रोध का पारावार न रहा; इतनी घृणा उनसे हुई कि उसी वक्त जाने का दिल चाहा; किन्तु सभ्यता के नाते धैर्य धारण करके बैठा रहा।

वे महाशय कुछ मिठाई आदि लेकर आये; और बोले—

"भाई ! इन्हें फ़िल्मों में लेते जाओ; इनकी इच्छा अब उधर जाने की हो रही है।"

मैंने उत्तर दिया—"आप अगर इनके पालन में असमर्थ हैं तो वैसा कहिये !" उन्हें शायद मेरी बात अच्छी नहीं लगी ! बोले—

"पालते पालते तो आज ३ वर्ष हो गये; घर-बार छोड़ा इनके लिये। आप क्या समझते हैं मैं इनके भरोसे खा रहा हूँ ?"

सच्ची बात स्पष्ट हो गई थी; पर मैंने सोचा; कहीं यहाँ पर दोनों का झगड़ा न हो जाय, किन्तु युवती आशा से ज़्यादा सभ्य थी और भोली थी और यही कारण था कि वह इस तरह का निरीह जीवन बिता रही थी—वह कुछ भी न बोली—सिर्फ़ मैंने देखा उसका चेहरा तमतमा आया है। चाय का प्याला रख कर वह चुपचाप एक कोने पर सिमट कर बैठ गई। मैं भी चाहता तो बात बात में लड़ बैठता; पर उस व्यक्ति से वाद-विवाद या लड़ाई-झगड़ा करना मेरी शक्ति के बाहर की बात थी। मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा—"नहीं यह मेरा तात्पर्य नहीं था। आप समझे नहीं।"

वह बोला—"अरे मैं सब समझता हूँ।"

गुस्सा से मिठाई या चाय मेरे लिये छूना भी असम्भव हो गया था। मैंने कह दिया—"क्षमा कीजिये, मैं यहाँ नहीं ठहर सकता ?"

वह बोला—"चाय तो पीते जाइये, नाराज़ क्यों होते हैं ?"

मैंने कहा—"नाराज़ नहीं—बस मैं जाता हूँ !"

किन्तु युवती का चेहरा देख कर मुझे वास्तव में दया आ गई। और इसी वक्त एक और भी बात मुझे लगी, हो सकता है, इस तरह मेरे चले जाने से इस राक्षस के हाथ इस बेचारी लड़की की पूजा हो। शायद वह समझ बैठे इसने उसे सभी कुछ बता दिया हो। इसलिये उस विरोध को मिटाना ही मैंने अच्छा समझा, अपने इस अपमान को कुछ देर के लिये दूर ही रख दिया।

किन्तु बड़ी ही तिक्त अनुभूति के बीच मुझे मिठाई और चाय पीनी पड़ी, और मैंने पी। साथ ही उन मित्र महाशय को भी अपने साथ शरीक किया। बड़ी मीठी ज़बान से मैंने उनसे पूछा—"तो क्या आप इनके बारे में सच कहते हैं ?"

उन्होंने जवाब दिया—"इन्हीं से पूछिये।

मैंने उससे पूछा—"क्यों जी आप क्या फ़िल्मों में काम करना चाहती हैं ?"

वह बोलीं—"जब जाना था तब तो गई नहीं; अब क्या जाना ?"

मैंने कहा—"मुझे बड़ी खुशी हुई कि आप इस तरह अब गृहस्थी जोड़ कर रहती हैं, ईश्वर आप लोगों को सफलता देगा !" और मैं चला आया।

बड़ी भारी उदासी और घृणा लेकर मैं उस अधमागार से बाहर निकला, आते वक्त उक्त युवती की असहाय चितवन ने हृदय पर और भी बड़ा घाव किया था, मैं एक ताँगे में बैठ कर अस्सी घाट

की तरफ़ जाने लगा। रास्ते में एक विचित्र अनुभूति हुई और यह अगर न होता तो शायद मैं अधिक व्यथित एवं खोया ही रहता।

आगे-आगे एक एक्का जा रहा था। एक युवती सम्भवतः—हिन्दू यूनिवर्सिटी की कोई छात्रा उसमें बैठी थी, खद्दर की सफ़ेद साड़ी उसने पहनी थी; माथे पर बिन्दिया थी और हाथ में पुस्तकें; सफ़ेद लम्बा मुख और मुख पर तेज का प्रकाश; देखने से एक प्रकार की श्रद्धा ही होती थी, किन्तु उसके एक्के के पीछे पीछे जो ३-४ छात्रों का दल साइकिलों में जा रहा था—उनके अजीब तरह के इशारों और भाषणों से मेरे हृदय पर बड़ा भारी धक्का लगा। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के लिए मन में एक प्रकार की अगाध श्रद्धा थी जो टूट कर चूर-चूर हो गई। इसी तरह के अन्यान्य व्यवहारों को देख कर पीछे तो वह श्रद्धा हवा में विलीन होगई; बल्कि कहना चाहिए वह श्रद्धा घृणा में बदल गई।

उसी समय हमें डाक्टर के० एन० गैरोला के यहाँ जाना था। डा० गैरोला पूर्वोक्त प्रोफ़ेसर गैरोला के ही छोटे भाई हैं और वियना से एम० डी० की उपाधि प्राप्त एक कुशल डाक्टर हैं। आप के बात करने के ढंग और गम्भीर हास्य को मैंने बहुत पसन्द किया। आप वहाँ 'हिमांचल' पत्र के प्रधान सम्पादक हैं और हिमालय-शिक्षा-सभा के प्रधान कार्यकर्त्ता, तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हैं।

रसिकता के नाते मैंने अपने शरीर की परीक्षा आप से करवाई और आपने जो कुछ मुझे स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपदेश दिया

उससे मेरा काफ़ी लाभ हुआ। आप वियना में रहते हुए फ़िल्मों के अभिनेता के रूप में भी प्रकट हो चुके हैं, इससे आपको फ़िल्मों से काफ़ी दिलचस्पी है। फ़िल्मों के बारे में हमारी काफ़ी देर तक बातें होती रहीं। आपने विदेशों का अपना अनुभव बड़े ही मनोरंजक ढंग से समझाया, जगह-जगह के चित्र भी दिखाये। चित्रों में बहुत से नामी स्थानों और व्यक्तियों का परिचय कराया। वियना में रहते हुए आप श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्रीमती कमला नेहरू की चिकित्सा भी कर चुके हैं।

इस के बाद हम वहाँ की प्रदर्शिनी में गये, जिसमें हमें चीज़ों के दाम तिगुने-चौगुने सुनने पड़े और हम सीधे यूनिवर्सिटी में आ गये।

हम लोग चाय आदि से फ़ारिग हुए ही थे कि पूज्य मालवीय जी के सेक्रेटरी महोदय वहाँ पधारे। आप से हमारी दो घण्टे तक बातचीत हुई और हमारी सभी बातें फ़िल्मों को ही ले कर हुई। श्री पाण्डेय काफ़ी रसिक और खुले दिमाग़ के वाक्पटु व्यक्ति हैं। फ़िल्मों से आपको अत्यन्त शौक़ है; और हर फ़िल्म की आप बड़े ही सुन्दर ढंग से आलोचना कर सकते हैं। यद्यपि आप देखते सभी फ़िल्मों को हैं, फिर भी पसन्द बहुत कम फ़िल्मों को करते हैं। आप की बड़ी भारी इच्छा है कि फ़िल्म-संसार का भी एक बार रस-पान किया जाय।

मुझे आपने फ़िल्म-सम्बन्धी त्रुटियों को बताया। आपका कहना है कि ऐसी ऐतिहासिक फ़िल्मों को पर्दे पर क्यों लाया

जाता है जिनमें इतिहास का अधूरा ज्ञान दिखाई पड़ता है : क्या विद्यापति और तुलसीदास के स्वतन्त्र गायन नहीं थे, जो फिर से बना कर उन फ़िल्मों में जोड़े गये ?

यद्यपि मैं आपके दृष्टिकोणों से पूरी तरह सहमत नहीं हो पाया, फिर भी आपके वक्तव्य से काफ़ी प्रभावित हुआ।

हम बनारस केवल एक दिन के लिये गये थे, किन्तु हमें वहाँ रहना पड़ा तीन दिन। और वे तीन दिन हम लोगों के ऐसे बीते जैसे तीन मिनिट बीतते हैं। उसका कारण यह था कि किसी अज्ञात शक्ति ने हमें वहाँ इस प्रकार अपना लिया था, कि हमें यह नहीं मालूम होता था कि कोई और काम भी हमें करना है।

तीसरे दिन प्रातः काल हम एक बड़ी ही सुखद स्मृति लिये वहाँ से मुगलसराय बम्बई मेल को पकड़ने के लिये उपस्थित हुए। हम लोग सोच रहे थे कि अपने टिकिटों को सेकिण्ड क्लास का करा लिया जाय क्योंकि बम्बई मेल में भीड़ के कारण तीसरी श्रेणी में जाना असुविधाजनक होगा जब कि इतना लम्बा सफ़र करना है। किन्तु पीछे यह विचार स्थगित कर दिया। और हम बम्बई मेल के आते ही तीसरी श्रेणी के डिब्बे में बैठे। इतना आराम था कि सारे डिब्बे में केवल पाँच-सात आदमियों के और कोई न था। मैंने और भाई सीताराम जी ने भी अपने-अपने बिस्तर बिछाये और बैठे ही थे कि बाहर प्लेटफ़ार्म पर मुझे मेरे एक बहुत पुराने मित्र जिन्हें लाहौर से जानता था दीख पड़े। मैं ने भीतर से आवाज़ दी।

वे देख कर चौंके, क्योंकि शायद वे मेरी याद भुला चुके थे। मैंने याद दिलाई। आपने मुझ से लाहौर में 'हिन्दी प्रभाकर' का कोर्स पढ़ा था—उन्हें याद आई, तपाक से बोले,—"अरे आप यहाँ कहाँ"—परिचय हुआ। बातें हुईं और गार्ड ने सीटी दी। वह मुझे अपने सेकिण्ड क्लास कम्पार्टमेण्ट में खींच कर ले गये—वह भी बम्बई जा रहे थे।

इन मित्र महाशय का परिचय भी अप्रासांगिक न होगा। आप पंजाब की एजुकेशनल सर्विस में एक बड़े प्रतिष्ठित पद पर हैं। उम्र में मुझसे कुछ ज्यादा ही हैं, हिन्दी से आप को बेहद शौक है, इसीलिये लाहौर में इन्हें 'हिन्दी प्रभाकर' का कोर्स पढ़ाने का मुझे मौक़ा मिला था। प्रभाकर की पढ़ाई में करीब-करीब हिन्दी साहित्य की सारी पढ़ाई हो जाया करती है, इसलिये उसमें वाद-विवाद और आलोचना करने का अच्छा मौक़ा मिलता है। और इन महाशय से तो इस विषय में जो आनन्द आता था, उसका तो मैं ही अनुभव कर सकता हूँ।

एक बात और है पंजाब यूनिवर्सिटी में 'हिन्दी रत्न' पास करने के बाद केवल अँग्रेजी विषय को लेकर मैट्रिक; 'हिन्दी भूषण' पास करने पर एफ० ए०; और प्रभाकर पास करने पर बी० ए० तक परीक्षा देने की सुविधा रहती है। उक्त मित्र महोदय ने भी यही सोच कर प्रभाकर का कोर्स पढ़ा था; ताकि वे सिर्फ़ अँग्रेज़ी सब-जेक्ट को लेकर बी० ए० की परीक्षा दे सकें। उन्हें मैं भाई साहब कहता था और उनकी श्रीमती जी को भाभी जी। उनका इस प्रकार

यकायक मिल जाना मेरे लिये कम कौतूहल का विषय नहीं था; किन्तु मुझे देखते ही उनका न पहचान लेना थोड़ा-सा मेरे लिए चिन्ता का विषय अवश्य हो गया।

खैर यह कहने पर भी कि मेरे साथ दूसरे साहब भी हैं और थर्ड क्लास का टिकिट है; वे न माने और ले गये अपने ही कम्पार्टमेण्ट में। वहाँ उनकी धर्मपत्नी को भी देखा, जिन्हें मैं पहले से ही जानता था और भाभी जी के नाते कभी-कभी 'विहारी सतसई' की टीका-टिप्पणी बता दिया करता था—मुलाक़ात हुई! यहाँ पर एक मज़ेदार घटना हुई जिस से भाई साहब के यकायक न पहचानने की कटुता को भूल गया।

मुझे देखते ही भाभी साहिबा ने कहा—"आपका 'विचार' मैं सदा से पढ़ रही हूँ बड़ा प्यारा पर्चा है।"

मैंने कहा—"आपकी दया।"

मित्र महाशय बोले—"विचार? विचार कैसा?"

भाभी बोलीं—" 'विचार' वही जिसे मैं पढ़ा करती हूँ, तुम भी तो उस दिन कहते थे कि अमेरिकन मेगज़ीन-सा निकलता है?"

मित्र बोले—"अरे हाँ हाँ विचार विचार! हाँ वह आपका पेपर है?"

मैं मुस्कराया। भाभी बोलीं—

"आप उसके सिनेमा एडीटर हैं।"

वे बोले—"अरे तो तुमने कभी कहा भी नहीं।"

भाभी बोलीं—"कहना क्या था तुम भी तो देखते थे कभी-

कभी उसे, मैंने समझा जानते हो।"

वे बोले—"बिल्कुल नहीं, मुझे तो ख्याल ही नहीं था। तो वह आपका पेपर है?"

मैंने कहा—"जी नहीं, मेरा तो नहीं, पर मैं भी उसमें काम करता हूँ।"

मुझे सोचने के लिये बाध्य होना पड़ा, एक ही घर में दोनों प्राणी रहते हैं और एक तो कितने ही वर्षों से मुझे याद रखता है, और दूसरे को कभी भी ख्याल नहीं आता, और उसे, जिसे मैंने दो वर्ष तक पढ़ाया है।

गाड़ी के चलते ही हमारी बातों का सिलसिला बदला—सिनेमा पर बात छिड़ी।

भाभी जी ने कहा—"औरत" फिल्म मुझे बहुत पसन्द आई, आप ने उसे देखा है?"

मैंने जवाब दिया—"देखा है, और मुझे भी वह बेहद पसन्द आई है, वास्तव में डाइरेक्टर महबूब ने भारतीय फ़िल्म-जगत् में एक नया रिकार्ड रखा है।

मित्र महाशय बोले—"क्या था उस फ़िल्म में?"

मैंने जवाब दिया—"आपने नहीं देखा उसे?"

भाभी जी बोलीं—"आप हिन्दुस्तानी फ़िल्मों से नफ़रत करते हैं, आप देखते हैं मेट्रो की फ़िल्में, वार्नर की तस्वीरें।

मैंने कहा—"हिन्दुस्तान के आम आदमियों का यही हाल है।"

मित्र बोले—"मगर हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में मिलता भी तो कुछ नहीं—आख़िर उन्हें देखने जायँ भी तो किस लिये ?"

मैंने जवाब दिया—"अँग्रेज़ी फ़िल्मों में क्या सब कुछ मिल जाता है ? ज़रा मैं भी सुनूँ उनमें क्या-क्या मिलता है ?"

वह बोले—"उनमें ? अब क्या बताऊँ क्या-क्या मिलता है, आप देखें तो पता चले ?"

मैंने कहा—"मैं भी बहुत देख चुका हूँ, पर मुझे उनमें ऐसी ख़ूबी नहीं मिली जो कि हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में नहीं !"

भाभी बोलीं—"हिन्दुस्तानी फिल्मों में एक बात तो ज़रूर नहीं रहती—" और वे मुस्कराईं, मैं समझ गया। चुम्बन-आलिंगन और अर्धनग्न दृश्य, मैंने उनकी हाँ में हाँ मिलाई—"हाँ, हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में अश्लीलता अवश्य नहीं रहती।"

मित्र बोले—"वह अश्लीलता भी काम की है, मगर—अच्छा, ख़ैर, छोड़िये इस डिसकशन को, अब बताइए कि आप बम्बई किस काम से जा रहे हैं ?"

मैंने कहा—"यों ही घूमने-फिरने—कोई विशेष काम तो है नहीं।"

वह बोले—"तो कम से कम आप हम लोगों को तो कुछ आर्टिस्टों से मिला दीजियेगा—भई अच्छा हो गया, हमारा घूमना भी सफल हो जायगा।"

भाभी जी ने जवाब दिया—"जब हिन्दुस्तानी फ़िल्में ही

आप को पसन्द नहीं हैं फिर हिन्दुस्तानी आर्टिस्टों से मिलने से क्या होता है ?"

वह बोले—"फ़िल्में नहीं तो फ़िल्मों वाले तो पसन्द हैं।"

मैंने कहा—"यही बात है, आप लोग फ़िल्मों वालों को पसन्द—नापसन्द करते हैं, फ़िल्मों को नहीं। हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में फिल्मों वाले जिस कला को दिखाते हैं, आप उस कला पर नज़र नहीं देते, उनके जिस्म उनकी खूबसूरती वगैरह देखा करते हैं।"

वह बोले—"अरे साहब; तो आप न मिलाइये, मगर जब बम्बई जा ही रहे थे तो एक बार उन लोगों से भी मिल लिया जाता, क्या हर्ज था ?"

मैंने कहा—"कोई बात नहीं-मिलाने में क्या हर्ज़ है, आप मिलिये; जा तो रहे हैं।"

इस के बाद बहुत-सी ऐसी बात हुई जिनका सम्बन्ध उनके और मेरे परिवार से था। खाना-पीना और तरह-तरह की गप्पों में अच्छा समय बीता। मैं कभी कभी भाई सीताराम जी के पास भी चला जाता, कभी सेकिण्ड क्लास में मित्र महोदय के पास आकर बैठ जाता।

बम्बई के रास्ते में हमें बाहरी दृश्य तो अच्छे-अच्छे नज़र आ रहे थे, किन्तु स्टेशन, जहाँ-जहाँ पर गाड़ी खड़ी होती थी, इतने छोटे थे कि उन्हें देखने में कोई आनन्द का अनुभव नहीं होता था। तीसरे दिन सुबह को इगतपुरी स्टेशन पर जब भाभी जी ने

मुझे सोते से जगाया तो बाहर की ओर नज़र उठाते ही मुझे जैसे नक्शा बदला नज़र आता था।

हमारी गाड़ी चारों ओर से घिरी हुई पहाड़ियों के बीच बड़ी तेज़ रफ़्तार में आगे बढ़ रही थी। गाड़ी का इञ्जन हटा कर उसके स्थान पर बिजली का कनेक्शन कर दिया गया था और इसीलिये गाड़ी बेतहाशा तेज़ चाल दिखा रही थी।

देखने वालों के लिए इगतपुरी से बम्बई तक स्वर्गीय दृश्य दिखाई देता है। पहाड़ी के बीच साँप की चाल से आगे बढ़ती हुई एलेक्ट्रिक ट्रेन मन में जिस आनन्द का दरिया बहा देती है, वह वर्णनातीत है। प्रातःकाल का सुहावना समय था, दूर दूर तक ओस-बिन्दुओं से पेड़ों की टहनियाँ झुकी हुई थीं, ऐसा लगता था जैसे मोतियों की वर्षा हुई हो। कभी-कभी हमारी ट्रेन सुरंगों में घुस जाती, मानों थोड़ी देर के लिये वह अँधेरे में डूब गई है, मानों काली चादर ओढ़ कर वह अपने प्रियतम को थोड़ी देर के लिए किसी चिन्ता में डाल रही है। दूर से कल्याण स्टेशन बम्बई से करीब चालीस मील की दूरी पर है, पर यहीं से बम्बई के बेतहाशा स्टेशन आरम्भ हो जाते हैं।

भाभी जी ने कहा—"आ गया बम्बई।"

भाई साहब ने कहा—"ऐसे ही बम्बई आ जायगा?"

मैंने जवाब दिया—"क्यों कुछ सोच-विचार के बाद आयगा क्या?"

भाभी जी हँस पड़ीं। भाई साहब ने कहा—"अभी बम्बई आने में काफ़ी देरी है।"

मैं ओढ़ना ओढ़ कर एक लेट और लगाने की कोशिश करने लगा।

भाभी जी ने चादर खींचते हुए कहा—"थोड़ा हाथ-मुँह तो धोलो, ज़रा शक्ल देखो तो शीशे में ?"

"क्यों आपको पसन्द नहीं, कहिये तो थोड़ा पाउडर लगा लूँ ?"

भाई साहब हँस पड़े। भाभी जी भी मुस्करा उठीं।

कल्याण स्टेशन पर चाय पीने के बाद जब गाड़ी चल पड़ी तो मैंने कहा—

"मैं फिर हाथ-मुँह धोकर आता हूँ भाभी जी, आप तब तक रामायण का पाठ कीजिये।"

"अच्छा-अच्छा जाइये, जल्दी आइयेगा।"

"क्यों कोई खास बात है क्या ?"

भाभी जी मुस्करा उठीं। मैं बाथरूम में घुस पड़ा। भाई साहब 'बाम्बे क्रानिकल' पढ़ने लगे !"

बम्बई में

ठीक ६ बज रहा था कि हम लोग बम्बई के विशाल स्टेशन 'विक्टोरिया टर्मिनस' पर जा लगे, और बात की बात में कई मित्र और परिचितों के साथ 'पञ्जाब होटल' में ठहरे।

होटल में जाते ही मैंने भाई पृथ्वीराज के मकान पर फ़ोन किया। वे बोले, अभी मैं पहुँचता हूँ, और हम लोगों ने उनके इन्तज़ार में चुपचाप बैठने के बजाय स्नानादि से निवृत होना ही अच्छा समझा।

स्नानादि से निपटे ही थे कि भाई पृथ्वीराज की कार आकर होटल के सामने लगी और खद्दर की ढीली पोशाक के साथ वह हमारे कमरे में दाख़िल हुए।

आवश्यक शिष्टाचार के बाद हम लोग खाना खाने बैठे और वे हमसे बातें करने में व्यस्त हो गये!

मैंने पूछा—"कलकत्ते से बम्बई में आप क्या ज्यादा सुखी हैं?"

उत्तर मिला—"अवश्य—किन्तु 'न्यूथियेटर्स' को मैं कभी नहीं भूल सकता। यहाँ मैं उतना पैसा कमा लिया करता हूँ जितना मुझे चाहिये और फिर भी किसी एक के यहाँ रहने की कोई बन्दिश नहीं ?"

मैंने पूछा—"क्या 'सिकन्दर' में आप को ले लिया गया ?" वे बोले—"हाँ मेरा कन्ट्राक्ट हो गया है। 'सिकन्दर' एक महान चित्र होगा !"

अपने एक मित्र को बहुत दिनों के बाद देखने पर मेरे मन में जो उल्लास हुआ था मैं उसे दबा न सका, यकायक मुझे 'चिनगारी' के मास्टर जी की याद आ गई और मैंने पूछा—

"चिनगारी में आपने कैसे काम किया ?"

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि 'चिनगारी' के बच्चे की बीमारी ने मेरे हृदय में करुणा का तूफ़ान मचा दिया था। मैं उसे देखते हुए आँखों के आँसुओं को नहीं समेट सका था—और भाई पृथ्वीराज भी अपने वास्तविक जीवन में एकबार एक सप्ताह के भीतर-भीतर अपने चाँद से खिलौने दो बच्चों को खो चुके थे।

प्रश्न सुनते ही वे कुछ गम्भीर हो गए। उमड़े गले से वे बोले—"हमारे घरवालों ने 'चिनगारी' का जब दृश्य देखा तो वे भी अपने आपको आँसुओं से न बचा पाये थे और मेरा हाल तो मैं ही जानता हूँ !"

मैंने उनका मन दूसरी ओर ले जाना चाहा-कहा—"आप हिन्दी के कुछ अख़बार पढ़ते हैं ?"

वे बोले—"आपका 'विचार' मुझे मिलता है, अच्छा पत्र है, बाकी पढ़ने की बात तो यह है कि—आप जानते ही हैं मैं कितनी हिन्दी जानता हूँ। अगर मैं एक घण्टे में १० पेज हिन्दी पढ़ूँगा तो ५० पन्ने अँग्रेज़ी के पढ़ लूँगा जिसे पढ़ कर मैं दुनिया के साथ चलने का भी दम भर सकूँगा!"

उनके इस उत्तर को सुन कर मुझे कुछ निराशा हुई, अपनी उस निराशा को न दबाते हुए मैंने पूछा—"मगर हिन्दी हमारी भाषा तो है न?" उत्तर मिला—"इसीलिए उसके प्रति मेरा अगाध स्नेह और सम्मान है।"

और मैं खाते-खाते भाई पृथ्वीराज से और प्रश्न पूछता जा रहा था और वे उत्तर देते जाते थे। बीच-बीच में कुछेक इधर-उधर की बातों का सिलसिला भी चल पड़ता। वे कहते सिनेमा-व्यवसाय में बहुत-सी ऐसी खामियों को दूर करना आवश्यकीय हो गया है, जिन्हें बिना दूर किये इस व्यवसाय का भविष्य नष्ट होता जा रहा है। उन्होंने एक अप्रुतालुप्त फ़िल्म-कम्पनी का हवाला देते हुए कहा कि, "इतनी बड़ी कम्पनी के लोप हो जाने का कारण अभी तक वहाँ के अधिकारियों को भी नहीं मालूम हुआ। बात क्या थी कि कम्पनी का स्टूडियो ऐसी जगह पर निर्मित था जहाँ हर दो मिनिट बाद रेल आया-जाया करती थी, और उसकी घरघराहट से हर दो-दो मिनिट बाद शूटिंग का काम बन्द रखना पड़ता था। अब अन्दाज़ा लगाइये कि कोई भी पाँच या आठ मिनिट का शाट वहाँ हो ही नहीं सकता था, जिस काम को १ दिन में होना था वह

काम ५ दिन में होगा, इस हालत में कम्पनी यदि फ़ेल न होती तो क्या होता ?"

उन्होंने और भी कहा, "अन्यत्र भी इस प्रकार की बहुत सी खामियाँ दीख पड़ती हैं, किन्तु अधिकारी उस ओर ध्यान न देकर अन्यत्र ध्यान दिया करते हैं !"

जिनको जीवन के कुछ ही दिन इस क्षेत्र में काम करना है, जिनके लिये न कोई पेन्शन है न प्रोवीडेन्ट फ़ण्ड, उन्हें यदि इस वक्त भी इतना न दिया जायगा तो क्या होगा। आप जानते हैं विदेशों में कितना वेतन दिया जाता है—आर्टिस्टों के साथ किसी प्रकार की बेरहमी नहीं की जाती, किन्तु यहाँ क्या हाल है ? ३।४ महीने काम कराया और १ महीने का वेतन दिया और भगाया उन्हें—आप स्वयं सोचिये उन्हें ज़िन्दा रहने देना है या नहीं ?"

मुझे उनकी बात में कुछ सचाई मालूम हुई और इसके बाद वे फिर मिलने का वादा कर चले गये।

मेरी इच्छा थी कि कुछ देर आराम कर लेता, किन्तु यह सम्भव न हो सका। भाभी जी ने आकर कहा—"चलिये हमारे कमरे में। वहीं बातें हों।"

"भाभी जी ! नींद आ रही है, जरा सोलूँ, आप तब तक भाई साहब से बातें कीजिये न, क्या आपका उनसे बातें करने का दिल नहीं चाहता ?"

"उनसे क्या बातें करें, सिनेमा की खबर जिन्हें कुछ भी

नहीं—और वे तो इस वक्त मालूम होता है सपना भी देखने लगे होंगे।"

मैंने कहा—"आप भी थोड़ा लेट लगाइये, दो दिन का चक्कर, थोड़ा सुस्ता लें!"

भाभी जी नाराज़ हो गईं। बोलीं—"अच्छा महाराज, हम से क्यों बातें करेंगे?"

भाभी जी की नाराज़गी ने मुझे हिला दिया, उनके जाते ही मैं भी पीछे-पीछे उनके कमरे में पहुँचा। कहा—"क्षमा कीजियेगा भाभी जी, आपको कष्ट हुआ!"

भाभी जी मुस्करा दीं!

मैंने भी मुस्कराते हुए भाभी जी के हाथ से किताब छीन ली और धम्म से उन्हीं के बगल में काउच पर बैठ गया—भैया—मित्र महोदय तो नींद में खर्राटे ले रहे थे। दर्वाज़े पर लगी रेशमी चिक हवा में फरफरा रही थी। मैं और भाभी जी दोनों ही एक काउच पर बैठे थे, हवा के ठंडे-ठंडे झोंके आरहे थे। मित्र महोदय सोये थे। भाभी ने कहा—"और सुनाइये। तो आज का आप का प्रोग्राम क्या होगा?"

मैंने कहा—"आज तो किसी से मिलने की इच्छा नहीं, सिर्फ 'बम्बई टाकीज़' में जाकर अपनी डाक देख लेनी है।"

वे बोलीं—"क्या वहाँ आपकी डाक आयगी?"

मैंने कहा—'हाँ' कश्यप जी के पते से आयगी।

डाक की याद आते ही मुझे 'बम्बई टाकीज़' में 'कश्यप' जी

को टेलीफ़ोन करना पड़ा। कई बार टेलीफ़ोन करने पर उनसे बातचीत हुई, मालूम हुआ कि डाक आई हुई है। मगर 'विक्टोरिया टर्मिनस' से 'मलाद' जाना और आना सहज नहीं था, कम से कम तीन घण्टे की ज़रूरत थी—दूसरे दिन जाने का निश्चय किया, और उस दिन अपने मित्र और 'बहूरानी' के सम्वाद-लेखक श्री अमृतलाल जी नागर का पता लगाना ज़रूरी समझा। हम लोग बस में बैठे और नागर जी का पता लगाने माहिम पहुँचे। कुछ देर इधर-उधर फिरने पर और पूछ-ताछ करने पर उनका पता लगाया।

समुद्र के किनारे सुन्दर स्वच्छ ईरानी होटल के ऊपर उनका कमरा-नागर जी के शब्दों में—साहित्यिक धर्मशाला—हमें इतनी पसन्द आई कि हम लोग भी अपनी इच्छा से और नागर जी के आग्रह से उन्हीं के यहाँ आ गए। उनका शुद्ध, शान्त मिजाज़ हमें मुग्ध करने के लिये काफ़ी था; साहित्यिक रुचि, सम्पन्न युवक का लापरवाह स्वभाव, हमें काफ़ी भाया। महेश बाबू उनके साथ बम्बई टाकीज़ के लिये किसी कहानी को लिख रहे थे—वे अपने टाइप के अकेले व्यक्ति थे। महेश बाबू का 'फ्रौड' और 'अनोखी' हमें कभी भी नहीं भूल सकती। उन दिनों महेश बाबू इण्डियन आर्ट में श्री कश्यप जी के साथ "अंगूरी" नामक चित्र प्रस्तुत कर रहे थे।

महेश बाबू लिखते थे किन्तु लिखते क्या थे, दृश्य सामने आ जाता था। अनोखी का अशर्फ़ीजटित बुर्का उनकी नई ईजाद थी! वहीं पर हमारी श्री किशोर शाहू और उनके पिता जी से भी मुलाक़ात हुई। दोनों ही सज्जनों से मिलकर बड़ी भारी प्रसन्नता हुई।

कलकत्ते से चलते हुए मैंने गढ़वाल सेवा-संघ के सेक्रेटरी की हैसियत से एक सूचना बम्बई के गढ़वाल भ्रातृ मण्डल को भेज दी थी कि मैं उनसे परिचित हो जाना चाहता हूँ, इसलिए वहाँ के गढ़वाल भ्रातृ-मण्डल के मन्त्री श्री ईश्वरीदत्त जी शर्मा का पत्र मुझे कश्यप जी के पते से मिला था। उस पत्र के अनुसार मैं बम्बई सेन्टिनल के सहायक सम्पादक श्री मायादत्त जी नैथाणी से मिला और उसके बाद उक्त संघ के प्रधान श्री शान्ता प्रसाद जी नैथाणी से भी बड़ी ही मधुर भेंट हुई।

दूसरे दिन बम्बई के हिन्दी विद्यापीठ में वार्षिकोत्सव होने वाला था, और 'शान्ति-निकेतन' से पण्डित हजारीप्रसाद जी द्विवेदी तथा क्षिति बाबू को वहाँ विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। बम्बई जाने से दो दिन पहले मैं 'शान्ति निकेतन' में पं० हजारी प्रसाद जी से मिला था और उन्होंने मुझे विद्यापीठ के उत्सव पर वहीं से निमन्त्रित भी कर दिया था—और मैं उक्त उत्सव में भी भाई नागर जी सहित गया।

पं० हज़ारी प्रसाद जी द्वारा लिखित 'विश्वभारती' के मान्य आचार्य श्री क्षिति बाबू का परिचय-पत्र सर्व प्रथम हम लोगों के हाथों में दिया गया। कुछ लड़कियों के बन्देमातरम गायन के बाद श्री क्षिति बाबू का हिन्दी में भाषण हुआ। क्षिति बाबू हिन्दी भाषा के भी कितने महान विद्वान हैं यह उसी दिन ज्ञात हुआ। आपके अगाध पाण्डित्य पूर्ण व्याख्यान ने सम्पूर्ण विद्वान-मण्डली और समवेत सभा को चकित कर दिया।

इसके बाद आचार्य हज़ारी प्रसाद जी का पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यान हुआ और हमें यह मानना पड़ा कि हज़ारी प्रसाद जी हिन्दी के विद्वानों में शीर्ष स्थान रखते हैं।

पण्डित सुदर्शन जी से भी वहीं पर मुलाक़ात हो गई।

पण्डित सुदर्शन जी न्यूथियेटर्स से बम्बई पधारे थे, वे वहाँ क्या कर रहे हैं, कैसे हैं—यह सब बातें जानने की बड़ी भारी इच्छा थी, क्योंकि कलकत्ता छोड़ते वक्त उनका कहना था कि "मैं सागर में फ़िल्मों का डाइरेक्सन् करूँगा" किन्तु दो वर्ष होने को आये पण्डित जी के बारे में कोई भी ख़ास ख़बर नहीं सुनने को मिली, इसी ख़याल से सभा-उत्सव समाप्त होते ही पण्डित जी से कुछ बातें कर लेना आवश्यक समझा, किन्तु पण्डित जी के शिष्यों की वहाँ पर कमी नहीं थी, सभी ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था। हम कहते कहते भी कुछ न कह पाये। हाँ हम से पण्डित जी सिर्फ़ इतना ही कह सके कि "मिनर्वा" स्टूडियो में कभी भी मुलाक़ात हो सकती है। और मैं वहाँ से श्रीयुत नागर जी के साथ नीचे उतरा। साथ में श्री नीलकण्ठ जी तिवारी भी थे। तिवारी जी की संगीतमयी कविता कुछ ही देर पहले उक्त उत्सव में सुन चुका था, और सुन क्या चुका था उनकी कविता ने और ख़ासकर उनके मीठे गले ने मुझे मोह लिया था। नागर जी ने उनसे परिचय कराया—आप एम० ए० साहित्यरत्न हैं और यहाँ नेशनल स्टूडियो में कहानी, सम्वाद और गायन-लेखक नियुक्त हुए हैं, अभिनय भी आप करेंगे।

सड़क पर आकर देखा सन्ध्या हो आई है और बम्बई जैसी मोहमयी नगरी उस समय ब्लैक आउट के कारण इतनी निर्मोही लग रही थी कि हमें उस समय बम्बई आना विशेष रूप से खटक रहा था।

साथ में भाई सीताराम जी भी थे। वे बोले—"चलिये कहीं घूमने चला जाय।"

भाई नागर जी ने कहा—"आप लोग जाइये, मुझे एक विशेष काम से जाना है।"

जवाब भाई सीताराम जी ने दिया—"विशेष काम क्या, किसी अभिनेत्री के यहाँ जाना है?"

हम लोग सभी हँस पड़े—हर्ज क्या था, बम्बई की सन्ध्या का उपभोग तो हो नहीं सकता था, किसी अभिनेत्री के यहाँ दस मिनिट बैठ कर चाय पानी ले लिया जाता तो विशेष खटकने लायक बात भी नहीं थी।

नागर जी बाले—"आप चाहें तो कहीं आपको मिलाया जा सकता है, बाकी मेरा ख़ास काम कुछ और है।"

धीरे-धीरे हम लोग महालक्ष्मी स्टेशन पर पहुँच गये थे, और दादर की गाड़ी भी आ पहुँची थी; नागर जी अपने ख़ास काम गये; तिवारी जी दूसरे दिन मिलने का वादा करके अपने घर चले गये।

भाई सीताराम जी और मैं दोनों ही कई दिन से कची रसोई खाने के लिये छटपटा रहे थे। सोचा आज कहीं भी मिले

रोटी या भात जरूर खाना है। दादर हम पच गये थे। सारा दादर छान मारा पर कहीं भी हमें चाय, केक और पेस्ट्री के सिवा कच्चे खाने की दूकान नहीं मिली। बड़ा दुःख हुआ। कष्ट भी हुआ। भाई सीताराम जी ऐसे आदमी थे कि अगर उन्हें तीन दिन खाना न भी मिलता तो वे एक शब्द भी बोलने वाले न थे, किन्तु उनके न बोलने से क्या होता था उनकी मौन भावना का मैं स्वयं अनुभव तो कर रहा था। एक होटल के मालिक को कहा—उन्होंने हमें रोटी बना के खिलाई किन्तु कच्ची रोटियों से हमें और भी कष्ट उठाना पड़ा।

कची रोटियों का बोझा पेट में थामे हम लोग माहिम के सामुद्रिक सैकत स्थान की ओर चल पड़े। शिवाजी पार्क में बहुत से सैर करते हुए जोड़ों को देखा। पारसी रमणियों के पहनाव और बिना संकोच व्यवहार ने हमें काफ़ी प्रभावित किया। हम लोग भी एक बेञ्च पर बैठ कर पार्क के अँधेरे का आनन्द लेने लगे।

इसी वक्त एक पारसी बच्चा हमारे पास आकर खड़ा हो गया। बच्चा इतना प्यारा था कि मै उसे बिना गोद में उठाये न रह सका। बच्चे की माता पास की ही बेञ्च पर बैठी देख रही थी। बच्चा चुपचाप मेरी गोद में आ गया, मैं उसे लेकर फिर बैठ गया, उस ने मेरी जेब से फाउन्टेनपेन निकालना चाहा, मैंने इसमें उसकी खुद मदद की और अपना काफ़ी दाम पेन खुद निकाल कर उसके हाथ में दे दिया। बच्चा निकल कर भागने की कोशिश करने लगा, मैंने उसे छोड़ दिया, वह दौड़ कर अपनी माँ के पास चला गया। माँ ने बच्चे

को अपनी भाषा में कई बार शायद पेन लौटा देने को कहा पर जब वह नहीं माना तो वह स्वयं पेन लौटाने और धन्यवाद के साथ लड़के की शरारत का ज़िक्र करके चली गई। हम लोग व्यर्थ ही मुस्काकर चुप हो रहे।

जानते-बूझते हुए भी हमने उक्त महिला से केवल बात करने के नाते पूछा कि—"यहाँ से समुद्र का किनारा कितनी दूर है ?"

वह बोली—"बहुत नज़दीक, बस इन्हीं पेड़ों के उस तरफ़, मगर इस वक्त उस तरफ़ जाना ठीक नहीं; इस वक्त समुद्र की सैर करनी हो तो या जूहू की तरफ जाइये या चौपाटी की ओर, आप कहीं बाहर से आये हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—"कलकत्ता से आये हैं, इसीलिए तो जानते नहीं वहाँ क्या है, चौपाटी तो देखा है। मगर जूहू नहीं देखा। वह कहाँ है ?'

"शान्ता क्रुज जाकर वहाँ जाया जाता है। अब वहाँ के लिए भी देरी हो गई, कल देखियेगा।"

बच्चा अब तक पेन लेने के लिए फिर झपट रहा था, और मैंने फिर वह उसके हाथ में दे दिया।

उसकी माँ ने कहा—"क्यों देते हैं, तोड़ दे सकता है ?"

मैंने कहा—"कोई बात नहीं।"

वह बोली—"यहाँ किसी बिजनेस के सिलसिले में आये हैं?"

"जी नहीं, यों ही सैर की गरज से।"

"हूँ।" कहकर वह भी हमारी बेञ्च के एक कोने पर बैठ

गई। महिला उम्र में प्रौढ़ थीं और काफ़ी सभ्य एवं सुशिक्षिता लगती थीं। मैंने बच्चे की ओर देखकर कहा—"बड़ा प्यारा बच्चा है।"

वे बोलीं—"शरारती है।"

"यह बच्चों का गुण है।"

"आप लोग कहाँ टिके हैं?"

"यहीं पास ही कहीं पर 'फैडेल कोर्ट' है। उसी में।"

"ओ उस कार्नर वाले मकान में? हम लोग उसी के सामने वाले मकान में तो रहते हैं।" उन्होंने हाथ फैलाकर उन मकानों की ओर निर्देश किया।

"अच्छा?"

"जी!"

"आप क्या काम करते हैं—मेरा मतलब आपके पति?

"शेयर मार्केट के ब्रोकर हैं! और आप लोग?"

मैंने जवाब दिया—"योंही अख़बारों में लिखने का काम करते हैं।"

"ओह रिपोर्टर हैं?......बड़ी खुशी की बात है, आप लोगों से मिलकर बहुत खुशी हुई।"

"और हमें भी।"

इसके बाद ठहरना भी ठीक नहीं था, मैंने बिदा माँगी—उन्होंने उठकर विदा तो दी, परन्तु बच्चे के हाथ से पेन देने पर बच्चा रो पड़ा मैंने कहा—"रहने दीजिये न! क्या हरज है?"

वे बोलीं—"वाह! यह भी क्या बात रही, रोने दीजिये इसे।"

मैंने कहा—"नहीं, नहीं, मैं फिर ले लूँगा अपना पेन।" और हम लोग जाने लगे। वे बोलीं—"तो मैं भी अब चलती हूँ।" और हम लोग साथ-साथ फैड्रेल कोर्ट तक गये। उन्होंने बताया—"यही मेरा घर है।"

हमने कहा—"अच्छा नमस्ते।"—हाथ जोड़ कर वे दरवाज़े के अन्दर चली गई।

हम लोग अपने कमरे में पहुँचे!

अच्छी हवा और अच्छे वातावरण में अच्छी ही नींद आई!

सुबह उठते ही भाई शान्ति प्रसाद जी नैथाणी से मुलाकात हुई। भाई नैथाणी जी शान्ताक्रूज में पोद्दार हाई स्कूल के प्रधान संस्कृत अध्यापक हैं, और बम्बई के गढ़वाल भ्रातृमण्डल के सभापति हैं। करीब १५ वर्ष बाद उनसे मुलाक़ात हुई थी, मुझे उस दिन ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे मैं इस समय स्वर्ग में हूँ। भाई नैथाणी जी का मेरे लिए पहले से ही अगाध स्नेह था, उनकी सद्-शिक्षाओं ने मेरी उन्नति की गति को बहुत आगे बढ़ाया था। आप बीसवीं सदी के युवक हैं और बीसवीं सदी की शिक्षा के आश्रित हैं, फिर भी आपके अन्दर अभिमान का नाम नहीं, बुरी भावनायें, कुसंस्कार आप में नाम को भी नहीं। प्रत्येक व्यक्ति से आप का घनिष्ट से घनिष्टतर सम्बन्ध हो जाया करता है। विश्वास की भावना आप में अटल है, सचाई और सद्गुणों की आप खान हैं।

भाई नैथाणी से मुलाक़ात हुई थी, वे भला कैसे मुझे कहीं अन्यत्र छोड़ते, बिना पूछे ही सारे सामान के साथ हमें शान्ताक्रुज में उन्हीं के यहाँ जाना पड़ा।

भाई नैथाणी श्री के मकान के सामने ही 'बम्बई टाकीज़' के प्रसिद्ध हास्याभिनेता श्री वी० एच० देसाई का मकान था, और उस दिन हमने उनसे भी मिलने का निश्चय किया, हम दोपहर में उनके मकान पर गये। अँगोछा पहने हुए श्री देसाई से भेंट हुई। उन्हें देखते ही मुझे 'भाभी' और 'कंगन' की याद आई और याद आते ही हँसी भी आ गई।

मैं मुस्करा रहा था कि श्री देसाई ने कहा—आप क्यों हँस रहे हैं? मैंने जवाब दिया—"आप के कामों की याद में!" और वे भी हँसते हुए बोले—"यह तो चलता ही रहता है!"

इसी वक्त एक युवती चश्मा चढ़ाये ग्रीन फ्राक पहने हम लोगों के सामने पान और सुपारी की प्लेट रख गई। श्री देसाई ने कहा, "यह मेरी लड़की है।" और फिर हमारी बातें आरम्भ हुईं।

श्री देसाई ने कहा—"मैं पहले वक़ालत करता था, और उससे उकता गया था, इसीलिये ही खेल में मैंने इस लाइन को देखा—आप लोगों की कृपा है कि मुझे सफलता मिली।" श्री देसाई ने साथ ही यह भी कहा कि—"मैं आपके लेखों को बड़े मनोयोग से पढ़ता हूँ, मुझे आपकी बातें काफ़ी पसन्द हैं।

इसके बाद हम लोग वहाँ से चले, और जाते समय श्री देसाई ने मेरी डायरी में निम्न पंक्तियाँ अपने हस्ताक्षर के साथ

लिख दी :—Smile awhile and life is worthwhile because you smile"

दोपहर का समय था, कड़ाके की गर्मी पड़ रही थी, एक जगह से दूसरी जगह जाना कष्टकर लगता था, फिर भी हमें जाना था। पं० सुदर्शन जी से मिलना था। मिनर्वा में टेलीफ़ोन किया, उत्तर मिला कि ३ बजे तक आइये।

रास्ते में विमलाकुमारी का घर पड़ता था, वहाँ भी हो लिये। क्योंकि विमलाकुमारी से हमारी कलकत्ते से जानपहचान थी, और उस ज़माने से थी जब वे फ़िल्मों में जाने के लिए छटपटा रही थीं—मासूम जवानी थी, कलकत्ता में गाना गाने में नामी थीं। जैसे स्वागत की हम आशा करते थे वैसा ही स्वागत वहाँ हुआ और हम वहाँ से सीधे सिवरी मूवीटोन पहुँचे।

जाते ही पं० सुदर्शन जी से मुलाकात हो गई, वे उस समय 'सिकन्दर' के संवाद लिखने में व्यस्त थे। उर्दू का स्क्रिप्ट सामने था। पण्डित जी बोले—"हमारी कम्पनी का यह सख़्त हुक्म है कि स्टोरी के स्क्रिप्ट को सिवा डाइरेक्टर और लेखक के और कोई नहीं देख सकता!"

हमने पूछा—"क्या यह सब ठीक है कि 'मिनर्वा कम्पनी' में हिन्दी, हिन्दू और हिन्दूधर्म को नफ़रत की नज़र से देखा जाता है?"

पण्डित जी ने कहा—"यह कतई असत्य है, सोहराब मोदी

सच्चे गुण-ग्राहक व्यक्ति हैं, वे स्वयं ही उर्दू नहीं जानते और हिन्दी अच्छी तरह से लिख-पढ़ लेते हैं।"

हमने पं० जी से प्रार्थना की कि "क्या डाइरेक्टर सोहराब मोदी साहिब से मुलाकात हो सकती है?"

पं० जी ने अपने स्वाभाविक मीठे शब्दों में कहा—"मुलाक़ात क्यों नहीं हो सकती, मगर इस समय वे कुछ बिज़ी हैं। समय लेना होगा, कल किसी वक्त। इस वक्त नसीमबानू और पृथ्वीराज उनके पास बैठे हैं।"

मैं एक क्षण के लिए पं० जी के कमरे से बाहर आकर कम्पनी के पब्लिसिटी मैनेजर श्री गोदे के हाथ में अपना कार्ड श्री मोदी तक पहुँचाने को दे आया।

पं० जी हमें चाय पिलाने की कोशिश कर रहे थे—कि श्री सोहराब मोदी स्वयं पं० जी के कमरे में आकर मुझे बुला ले गये।

भाई सीताराम जी और भाई शान्तिप्रसाद जी तब तक 'उल्टी गंगा' का शूटिंग देखने लगे।

डाइरेक्टर सोहराब मोदी ने बड़े मीठे शब्दों में मेरा स्वागत किया और जैसे बहुत पहले से ही सोचे हुए किसी विषय पर बात करना आरम्भ कर दिया।

मैंने देखा 'विचार' की उस सप्ताह की कापी उनकी टेबुल पर लाल स्याही के चिन्हों से अंकित रखी है, और टेबुल के बाईं ओर आलमारी में हज़ारों पत्र-पत्रिकाएँ फ़ायलवार सजा कर रखी हैं।

उन्होंने पूछा—"आप लोग जो फ़िल्मों की आलोचनायें करते हैं, उनसे फ़िल्म-व्यवसाय का फ़ायदा होता है?"

मैंने देखा डाइरेक्टर मोदी उस समय कुछ ऐसे मूड में हैं, या कहना चाहिये उनकी दार्शनिकता उन्हें किसी से कुछ तर्क करने के लिए ज़ोर दे रही थी। फिलास्फ़र तार्किक होते ही हैं। किन्तु भला वे मुझ से पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और तेज को लेकर क्या तर्क करते, उन्हें तो इस पर वाद-विवाद करने के लिए उन्हीं जैसा कोई तार्किक चाहिए था, इसीलिए उन्होंने उक्त प्रकार का प्रश्न करना ही उपयुक्त समझा, और उसका उत्तर इस प्रकार उन्हें मिला—

"अवश्य दे सकती हैं, देती हैं और देंगी। यदि आलोचनाओं का भय न होगा तो डाइरेक्टर कूड़ा-कबाड़ सभी कुछ बनायेंगे और दुनिया को नरक में डालते जायेंगे।"

"आप लोग आलोचनायें दुनियाँ को बचाने के लिए लिखते हैं, या डाइरेक्टरों को सिखाने के लिये?"

"डाइरेक्टर सीखेंगे तो उनसे होने वाली बुराई से दुनिया अपने आप ही तो बचेगी।"

"आप क्या समझते हैं, पत्रों की आलोचनायें देख कर दर्शक चित्र देखने जाते हैं?"

"आलोचनायें देखते हैं या नहीं यह दूसरी बात है, किन्तु डाइरेक्टर उसे जरूर देखेंगे और आगे से अवश्य उन्नति करेंगे, सतर्क रहेंगे। पत्रकारों की आलोचनायें जनता की आवाज़ हैं, जो

भावना निर्माताओं तक पहुँचाई जाती है। और फिर यह भी कोई बात नहीं कि दर्शक आलोचनायें नहीं देखते।"

"मगर मैं कहता हूँ दर्शक आलोचनायें नहीं देखते और अगर देखते हैं तो उस पर निर्भर होकर वे फ़िल्मों को देखने नहीं जाते, जिसे जाना होता है वह जायेगा ही, जो नहीं जाना चाहता वह नहीं ही जायेगा। अब बात रही डाइरेक्टरों और निर्माताओं को सतर्क करने की, उन्हें तो आप जितना सतर्क एक चिट्ठी देकर कर सकते हैं उतना आलोचना छाप कर नहीं।"

"मैं, क्षमा कीजिएगा, आपकी बात से सहमत नहीं हूँ कि दर्शक आलोचना नहीं देखते या उसका महत्व स्वीकार नहीं करते। जिन्हें जाना होता है, वे अवश्य जायेंगे यह ठीक है किन्तु जिसकी आलोचना उन्हें जँचेगी वहीं जायेंगे—ऐसे फ़िल्म को तो वे न देखेंगे, जिससे उनका नुक्सान हो। या जिन्हें देखकर वे समझेंगे कि उनके पैसे मिट्टी में मिल जायेंगे।"

"ख़ैर, यह तो आपकी इच्छा है आप न स्वीकार करें, पर मैं तो यही समझता हूँ। मगर कुछ देर के लिये मान लिया कि आलाचोनाओं का असर होता है, और फ़र्ज़ किया आपने एक ऐसे चित्र की आलोचना की जो देखने के काबिल नहीं और लोगों ने उसे नहीं देखा और वह फ़िल्म फेल हो गई, फलतः जिस कम्पनी ने उसे बनाया है उसके दर्वाज़े पर ताला पड़ गया और उसमें काम करने वाले जो १००—२०० आदमी थे और उनके पीछे जो ५–६ सौ व्यक्ति पेट भर रहे थे, ज़रा सोचिये, उनका

क्या हाल होगा ? आप स्वयं बताइये, आपकी आलोचना ने जनता का फ़ायदा किया या नुक़्सान ?"

"आपने तो इस प्रश्न को भावना के अन्दर डाल दिया, इस तरह तो हमें बिना कुछ सोचे-समझे सब कुछ मान लेना पड़ेगा, पर सिनेमा एक शिक्षणात्मक साहित्य है, अच्छे साहित्य की तारीफ़ और बुरे साहित्य की आलोचना (कड़ी) होना आवश्यक है।"

"आप सिनेमा को साहित्य मानते हैं ?"

"क्यों नहीं ? जिससे लोक-शिक्षा मिलती है, वही साहित्य है, सिनेमा से क्या शिक्षा नहीं मिलती ?"

"मगर मैं इसे विशुद्ध व्यवसाय मानता हूँ—यह व्यवसाय ही है।"

"अगर आप इसे व्यवसाय ही कोरा मानते तो क्यों नहीं आपने "पुकार" में एक नग्न नृत्य दिया, उससे आप का बाक्स आफ़िस (B^x office) के लिहाज़ से ज्यादा फ़ायदा होता ?"

"नहीं, हमारा नुक्सान होता, लोग मुझ से इस तरह की आशा नहीं रखते।"

"मगर व्यावसायिक फ़ायदा तो होता ही।"

"शायद नहीं होता, बल्कि उससे हम बदनाम होते, लोग उसको देखने जाते भी नहीं।"

"इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि उसमें साहित्यिक भावना है, आपने भी तो अच्छे-बुरे का ख़याल किया। यही अच्छे-बुरे की

भावना तो आदर्श की ओर ले जाती है। इसीलिये तो सिनेमा केवल व्यवसाय नहीं अपितु साहित्य भी है !"

और इस तरह रात तक हम लोगों की बातें होती रहीं, सिवरी का वह विशाल स्टूडियो हमारी स्मृति में हमेशा के लिये रहेगा क्योंकि उस दार्शनिक डाइरेक्टर के व्यक्तित्व की छाप हमारे हृदय में हमेशा के लिए लग चुकी है !

पर्दे पर ही अब तक उन्हें देखा था, सामने उनके सुगठित शरीर और उत्फुल्ल आनन को देखकर मैं भौंचक्का रह गया। उनके मिठास भरे शब्द कभी न भूलने वाले हैं। कुछ ही दिन पहले कलकत्ते की बात है कि उत्तर भारतीय एक प्रसिद्ध पत्र के सम्पादक के साथ मैंने मिनर्वा मूवीटोन का 'जेलर' देखा था। वे कई दृश्यों को देख कर आँसू गिरा रहे थे और मैं गुस्से से फुंकारे भर रहा था। वे चित्र को चित्र की हैसियत से देख रहे थे और मैं सारे जेलर में जेलररूपी डाइरेक्टर श्री सोहराब मोदी को देख रहा था कि सारी कहानी किस तरह एक बदसूरत 'जेलर' के आस-पास चक्कर लगा रही है। भारतीय फ़िल्म-जगत में यह पहली चीज़ थी कि चित्र का हीरो सुन्दर न बनाकर बदसूरत बनाया गया था, और सम्पूर्ण चित्र को उसी पर केन्द्रित किया गया था। मैंने अपने मन में एक धारणा-सी बना ली कि डाइरेक्टर सोहराब मोदी ने इस चित्र की कहानी अपने लिए लिखाई है, और मैं क्षुब्ध हो गया—यही था मेरे गुस्से होने का कारण भी।

इसी विषय को लेकर अपने सम्पादक मित्र से मेरा लम्बा

वाद-विवाद हो गया और निर्णय इस बात पर ठहरा कि एक बार फिर से 'ज़ेलर' देखा जाय; किन्तु फिर ऐसा मौका नहीं आया कि हम जेलर देख पाये हों।

संयोग की बात है—कलकत्ता में 'पुकार' चल रहा था, और वहां सम्पादक महोदय भी कलकत्ते में थे, हम दोनों ने मिल कर 'पुकार' भी देखा, और विचार-विनिमय के बाद यह निष्कर्ष निकला कि 'पुकार' में बहुत-सी खूबियाँ हैं, जिन में सब से बड़ी खूबी उसके सम्वाद की हैं; बल्कि कहना चाहिए कि उसके सम्वादों ने उसकी अन्य सभी खूबियों को एक तरह से दबा दिया है, हम लोग इस बारे में एकमत थे कि 'पुकार' को अभिनय की दृष्टि से यदि सफलता मिली तो वह केवल संग्रामसिंह-रूपी डाइरेक्टर सोहराव मोदी के कारण। किन्तु केवल इन दो चित्रों को देखकर उनके अन्दर के कलाकार में और भी कुछ गुण हैं, यह हम नहीं जान पाये थे।

इस बार बम्बई में मुझे दो दिनों के भीतर कुछ घण्टे डाइरेक्टर सोहराव मोदी से बात-चीत करने का मौका मिला। यद्यपि उनके विषय में इसी थोड़े से समय में पूरा ज्ञान हासिल करना असम्भव था, फिर भी उनके व्यक्तित्व में और उनके हृदय में जो दो महान कलायें मैंने पाईं, उनके आधार पर मैं उन्हें केवल डाइरेक्टर या प्रोड्यूसर मानने को तैयार नहीं हूँ—जो कुछ थोड़ा सा संसर्ग मुझे उनका मिला है, उससे मैं कह सकता हूँ, कि वे एक पक्के दार्शनिक व्यक्ति हैं और इसी लिए एक उच्चतम कलाकार।

विशालकाय, प्रशस्त ललाट, मुख पर विजय की तथा

आन्तरिक सन्तोष की स्पष्टता, मन्द मुस्कान, मीठी बोली, सोच-समझ कर बोलने का ढङ्ग और नम्र स्वभाव वाले दार्शनिक डाइरेक्टर सोहराब मोदी ६ बजे अपने स्टूडियो में आते हैं और रात को ६ बजे लौटते हैं। श्रीयुत पं० सुदर्शन जी ने कहा था कि हमारे डायरेक्टर श्री मोदी साहब सब से पहले आते हैं और सब से पीछे घर जाते हैं, मैंने भी उन्हें वैसे ही पाया।

उनसे मिलने के बाद जहाँ तक मैंने उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण किया; मुझे उन में विशेष रूप से दो बातें मिलीं। एक तो उनका दार्शनिक व्यक्तित्व और दूसरा उनका कलात्मक व्यक्तित्व। हर समय उनका मन दो विचार-धाराओं में बहता रहता है, उनकी आभ्यान्तरिक विचार-धारा बाहरी विचार-धारा से भिन्न है, उनका कलात्मक दृष्टिकोण बाहरी है, जिस के द्वारा वे सांसारिक उन्नति-अवनति को देखा करते हैं, और उनका दार्शनिक दृष्टिकोण आभ्यान्तरिक है जिसके द्वारा वे किसी न किसी पहेली में उलझे रहते हैं, उसके सामने वे संसार की भावनाओं को कुछ भी महत्व नहीं देते। मैंने इन्हीं दो धाराओं का विश्लेषण करने के लिए उन्हीं के मुँह पर कुछ तारीफ़ उनकी की, किन्तु दार्शनिक भावापन्न डाइरेक्टर मोदी ने उस तारीफ़ को केवल शिष्टाचार के लिहाज़ से ग्रहण किया और फिर उसी वक्त कह भी दिया कि मैं तो, भई, स्वामी विवेकानन्द का भक्त और स्वामी रामकृष्ण का शिष्य हूँ, निन्दा या प्रशंसा से मुझे क्या वास्ता ?

इस वाक्य के निकलते ही मेरी धारणा सबल हो उठी, किन्तु

बहुत पहले 'जेलर' देखते वक्त मैं इस महान व्यक्तित्व के प्रति 'स्वार्थी' शब्द का प्रयोग कर चुका था, मौखिक नहीं—केवल मन-ही-मन। इसलिए उस वक़्त मन-ही-मन मुझे क्षमा भी माँगनी पड़ी और मुझे लगा जैसे उस महान् व्यक्ति ने भी अपने सच्चे हृदय से मुझे क्षमा कर दिया हो।

मैंने उनके साथ कई विषयों को लेकर तर्क किया और मैंने देखा कि वे एक कुशल तार्किक हैं, किन्तु ऐसे गर्हित गुण-सम्पन्न तार्किक नहीं कि जो अपने तर्क में दूसरों को आगे बढ़ने देना ही नहीं चाहते। डाइरेक्टर मोदी मेरी बातों को सुनते थे और सोच-विचार के बाद नपा-तुला उत्तर देते थे कि मुझे प्रत्युत्तर देने में बड़ा ही आनन्द का अनुभव होता था और साथ ही मुझे ऐसा अनुभव होता था कि मैं एक ऐसे व्यक्ति से बातें कर रहा हूँ, जो सभी विषयों का पण्डित है, जिसके समझाने का तरीक़ा अत्यन्त सरल, साफ़ और बुद्धिमत्तापूर्ण है। मुझे मन-ही-मन उस आदरणीय व्यक्ति के प्रति हार्दिक श्रद्धा प्रकट करनी पड़ी।

इस स्थल पर उन्होंने कहा—'आप सिनेमा को साहित्य मानते हैं' और वह हँस पड़े थे ऐसी एक विवाद भरी हँसी कि मुझे कुछ क्षण के लिये संकुचित-सा हो जाना पड़ा; किन्तु मेरा सङ्कोच शीघ्र ही दूर हो गया जब मैंने उस विषाद भरी हँसी पर विचार किया जो हँसी आज कल के सिनेमाओं की छीछालेदर देखकर स्वयं ही निकल पड़ी थी, मेरे मन ने भी कहा, हाँ ठीक है, इस हालत में कैसे कोई विचारशील व्यक्ति कहे कि सिनेमा भी साहित्य है।

हाँ, एक बात और जो मैंने उनमें पाई वह थी दूसरे की भावना को समझने की शक्ति। विद्वान् हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, गुणी हो, निर्गुणी हो, किसी तरह के भी व्यक्ति की भावना समझने की शक्ति उनमें है, वह किसी का भी निरादर करना नहीं जानते, हर एक के लिए आदर की भावना उनके मन में भरी हुई है, वह कहा करते हैं—'अगर हम मनुष्य बने हैं तो अवश्य ही मानवता की रक्षा करें, एक-दो की नहीं, समस्त मानव-समाज की सेवा के लिये अपने आपको विसर्जित करदें, अगर हम किसी से कुछ पा सकते हैं तो अवश्य ग्रहण करें और किसी को कुछ दे सकते हैं तो ज़रूर दान करें।'

महत्ता के लिये व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है, किन्तु वह व्यक्तित्व गुणों से पूर्ण होना चाहिए। डाइरेक्टर मोदी में व्यक्तित्व है जो गुणों से परिपूर्ण है। मनुष्य का सब से बड़ा गुण उसमें अहङ्कार का अभाव है। अधिकांश व्यक्तियों में इस अहङ्कार का अभाव होता अवश्य है; किन्तु अधिकतर इसलिए कि उन्हें अहङ्कार प्रदर्शित करने का मौक़ा नहीं मिलता। किन्तु जिन्हें इस का मौक़ा मिलता है और वह अहङ्कार को अहमन्यता को पास फटकने नहीं देते, उन्हीं के लिये हम महान् कह सकते हैं और जहाँ तक मैंने देखा श्री सोहराब मोदी ने भी इतनी बड़ी ख्याति और प्राप्ति पर भी अहङ्कार को पास नहीं फटकने दिया। 'पुकार' और 'भरोसा' ने—अत्युक्ति नहीं, उन्हें सातवें आसमान पर बिठाया है किन्तु वह निर्लिप्त हैं जैसे उनका यही मूलमन्त्र हो 'काम करते

जाओ, तो फल स्वयं ही मिल जायेगा' और यह कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं कि यही अहमन्यता का अभाव, उनकी यश-राशि चहुँ ओर छिटकाने में समर्थ हुई है।

मैंने पहले ही कहा है कि डाइरेक्टर सोहराब मोदी जो-कुछ भी कहते हैं, काफ़ी सोच-विचार कर कहते हैं। इसी तरह वह जो-कुछ लिखते हैं या लिखवाते हैं, काफ़ी सोच-विचार के बाद, और यही कारण है कि उनके चित्रों में जो कुछ भी होता है, सम्वाद, गाने या कहानी की मंशा सभी कुछ काफ़ी वाद-विवाद के बाद दिया जाता है। किसी के धार्मिक तथा आत्मिक विश्वास पर ठेस न लगने पाये, कोई भी शब्द इस प्रकार का न आजाय जिस का तात्पर्य ज़रा भी दूसरा अर्थ रखता हो, उनके हाथ जो चीज़ निकलती है, वह वास्तव में माँजी हुई होती है।

मेरे विचार में वह कहानी-लेखकों, सम्वाद तथा गीत-लेखकों पर ही निर्भर रह कर कोई भी चीज़ जनता के सामने देने को प्रस्तुत नहीं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह उन कलाकारों पर विश्वास नहीं करते, वह उनका सम्मान करते हैं और उनका सम्मान करना जानते हैं, किन्तु उनका खयाल है कि अपनी आँखों के सामने से चीज़ गुजर जाए तो अच्छा है, इससे उनका यह भी तात्पर्य रहता है कि वह हर प्रकार जवाबदेही के ज़िम्मेवार अपने आप बन जाते हैं, यदि वह किसी की रचना में कोई परिवर्तन तथा परिवर्धन करना चाहेंगे तो अन्यान्य बहुत से डाइरेक्टरों की तरह कहीं भी इच्छित परिवर्तन नहीं कर देंगे, बल्कि कहानी

लेखक तथा सम्वाद-लेखक को अपनी इच्छा से पूरी तरह परिचित करा कर फिर उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहेंगे। मैंने देखा, एक छोटे से वाक्य पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया जा रहा था, और उस विचार-विनिमय का अन्त तब हुआ जब डाइरेक्टर मोदी को पूरा इतमीनान हो गया कि जो कुछ वह कहना चाहते हैं वही इसका तात्पर्य है।

'विचार' वे नियमित रूप से पढ़ते हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई। इसके बाद हमने मिनर्वा का विशाल स्टूडियो देखा, और सन्ध्या होते-होते हम लौटे, सिवरी स्टेशन से अन्धेरे में हम लोग एक पहाड़ के रास्ते परेल पहुँचे, वहाँ न्यूथियेटर्स का 'हारजीत' देखना था।

'हार जीत' देख रहे थे और बम्बई के धनाढ्य पारसी-परिवारों के लोगों के कपड़ों से आती हुई सुगन्ध सारे हाल को अपूर्व सुगंन्धमय बना रही थी। 'हारजीत' में मैं एक स्थान पर खुद काम कर चुका था, इस लिये उसी अंश को देखने की अभिलाषा मुझे बहुत अधिक थी, किन्तु जब मैंने वह अंश देखा तो मुझे अपने ऊपर बड़ी निराशा हुई, मेरे चेहरे पर भाव का नाम न था। उस समय मुझे ख्याल आया, हम लोग दूसरों पर टीका-टिप्पणी तो खूब कर सकते हैं, किन्तु जब स्वयं काम करना पड़ता है तो क्या हाल होता है! ख़ैर, किसी प्रकार वह अन्तिम दृश्य मैंने देखा।

खेल समाप्त होते ही बाहर आ रहे थे कि वहीं भाभी जी और

भाई साहब महोदय से भेंट हो गई। वे भी 'हार जीत' देख कर आ रहे थे।

भाभी जी बोलीं—"अरे आप को भी तो देखा उसमें!"

मैंने कहा—"कोई दूसरा रहा होगा!" लज्जा से मेरा मुख लाल हो गया था, पर अन्धेरे में भाभी जी को वह लालिमा न दिखाई दी। वे बोलीं, "वाह, बुकलेट में नाम भी आप का छपा है!"

मैंने पूछा—"आप लोग चाय न पीयेंगे, चलिये किसी होटल में।"

और हम सब पास के एक ईरानी होटल में चाय पीने लगे।

भाभी जी का मुस्काना बन्द न हो रहा था, मैं उनसे आँखें न मिला पा रहा था। मित्र महोदय को पता भी न था कि क्या देखा। भाई सीताराम जी और भाई शान्तिप्रसाद जी 'हार-जीत' की तारीफ़ कर रहे थे।

भाभी जी का अनुरोध टाला न गया। हमें उन्हीं के होटल में खाने के लिये जाना पड़ा।

भाभी जी ने सारे दिन का वृत्तान्त हम से पूछा, और हमने भी ठीक-ठीक उनके सामने दिन भर का किस्सा रख दिया। जब हमने मोदी साहब की भेंट का ज़िक्र किया तो भाभी जी बहुत खुश हुई पर उन्होंने तत्काल मुझे निर्दयी शब्द से भी पुकारा कि इस मज़ेदार भेंट में मैं उन्हें भी साथ क्यों नहीं ले गया?

मैंने बड़ी सावधानी से उनके सामने अपनी मजबूरी पेश की।

कि लोगों के मन के व्यर्थ ही ग़लतफ़हमी पैदा करने के लिए यह उचित न जँचा।

भाभी जी का चेहरा लाल हो गया। और भाई साहब खिल खिला कर हँस पड़े, बोले—बात तो पते की कही है।

भाभी जी नाराज़ हो गईं। मैंने हाथ जोड़ कर क्षमा चाही और वादा किया कि कल या परसों आपको उनसे ज़रूर मिला लाऊँगा।

मगर भाभी जी ने साफ़-साफ़ इन्कार कर दिया कि अब तो मैं किसी भी आर्टिस्ट से मिलूँगी ही नहीं।

क्या करते लाचारी थी। खाना खत्म होने के बाद रात को टैक्सी की गई और भाई नागर जी के निवासस्थान पर हम पहुँचे। श्री नीलकण्ठ जी तिवारी से पिछले दिन ही यही व्यवस्था की गई थी। तिवारी जी वहाँ पहले से उपस्थित थे। हिन्दी साहित्य के विषय में फिल्मों के आधुनिक गायनों के विषय में चर्चा होते हुए भी तिवारी जी ने हिन्दी के प्रायः सभी बड़े-बड़े कवियों की कवितायें उन्हीं जैसी टोन में सुनानी आरम्भ की। इस अभिनय को देख भाई नागर जी के साथ हम लोग सभी काफ़ी मग्न थे। और इसके बाद तिवारी जी ने हमें एक लिखित वक्तव्य दिया जो बहुत उपयोगी होने के कारण यहाँ दिया जा रहा है:—

मिनर्वा मूवीटोन के "सिकन्दर महान" की भव्य तैयारियों की चर्चा महीनों से हो रही थी और जनता विरहिणी की तरह इस चित्र के लिये आकुल प्रतीक्षा कर रही थी। आखिर "सिकन्दर

महान" वास्तव में अपनी महानता के साथ जनता के सम्मुख आ ही पहुँचा। इस चित्र के विधाता भारतवर्ष के उच्चकोटि के निर्माता, निर्देशक और अभिनेता श्री सोहराब मोदी हैं। इन तीन महान योग्यताओं का सफल त्रिवेणी-संगम बहुत कम व्यक्तियों म होता है। श्री सोहराब मोदी भारतीय फ़िल्म-क्षेत्र में अद्वितीय हैं। "पुकार" ने तो श्री सोहराब मोदी की सर्वतोमुखी प्रतिभा पर चार चाँद लगा ही दिये थे, "सिकन्दर महान" ने तो उन चार चाँदों में शारदीय पूर्णिमा की निष्कलुष चन्द्रिका भी भर दी।

वास्तव में "सिकन्दर" एक महान चित्र है। हमें तो ऐसा लगा कि शायद ही इतना भव्य चित्र हमने भारतीय "चित्र-पट" पर देखा हो। हमने यह सुना है कि श्री सोहराब मोदी साहित्यिक व्यक्ति हैं और हिन्दी भाषा तथा साहित्य का उनमें पर्य्याप्त ज्ञान है। वे उर्दू-लिपि नहीं पढ़ सकते—उन्होंने हिन्दी-लिपि तथा हिन्दी भाषा के माध्यम से ही शिक्षा प्राप्त की है।

कहने का तात्पर्य यह है कि श्री सोहराब मोदी अन्य निर्माताओं, निर्देशकों तथा अभिनेताओं की तरह केवल व्यापारिक अंग्रेज़ी भाषा बोलने में ही पटु नहीं, बल्कि कला-पारखी और साहित्यिक भी हैं। जो निर्माता और निर्देशक, साहित्य-ज्ञान रखता है भला फिर उसकी कृतियों में उच्चकोटि की कला, और साहित्य क्यों न विद्यमान हो? यही कारण है कि श्री सोहराब मोदी के चित्रों की कहानियाँ, सम्वाद और गायन अपनी गम्भीरता और मार्मिकता के कारण हर एक व्यक्ति को बरबस मोह लेते हैं।

उनमें सार्वजनीन मार्मिकता होती है। यह सार्वजनीन, सार्वदेशीय अपील, महान प्रतिभा की साधना-तपस्या का ही फल है। प्रत्येक व्यक्ति सार्वजनीन भावनापूर्ण कृति तय्यार नहीं कर सकता। संसार की जितनी महान् प्रतिभाएँ—चाहे कवि हो या उपन्यासकार या और कोई—जो अपना नाम अजर-अमर कर गई हैं—संकुचित दायरे से ऊपर उठ कर सार्वजनीन अपील करने वाली महान कृतियों के निर्माण में सफल हुई थीं। इसी कारण वे प्रतिभाएँ—देश, काल और जाति की सीमाओं के पार-प्रत्येक मानव-हृदय-मन्दिर की आदर्शमूर्तियाँ बन गई हैं। श्री सोहराब मोदी के 'पुकार' और "सिकन्दर" चित्र ऐसी ही प्रतिभा के परिचायक हैं।

क्या सेटिंग्स, क्या सीन-सीनरी, क्या अभिनय, क्या कहानी, क्या सम्वाद और गीत—सब बातों में "सिकन्दर" भव्य है, महान है। "सिकन्दर" देखने के बाद हमें यह महसूस होता है कि श्री सोहराब मोदी सर्व श्रेष्ठ निर्माता और निर्देशक के पद पर आसीन हो गए। हम यहाँ "सिकन्दर" की अन्य खूबियों पर प्रकाश न डाल कर केवल "सिकन्दर" की कहानी, सम्वाद और गायन पर कुछ लिखना चाहते हैं। वैसे तो हमें सोहराब मोदी का अभिनय सर्व श्रेष्ठ जँचा।

श्री सोहराब मोदी ने राजा पुरु का पार्ट अदा किया है और उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। पृथ्वीराज ने सिकन्दर का पार्ट किया है। पृथ्वीराज का अभिनय हमें पसन्द तो आया पर उनका अभिनय विचित्र ढंग का हुआ है जिसे हम समझ नहीं सके। इन

लोगों के अलावा वनमाला बी० ए०, बी० टी० ने भी रुखसाना का पार्ट सफलतापूर्वक किया है। मि० शाकिर ने अरस्तू का छोटा सा रोल किया है जो हमें बहुत स्वाभाविक लगा।

अब आइये कहानी की तरफ़। यह कहानी ६० फ़ी सदी यथार्थ है और ४०फ़ीसदी कल्पनात्मक। कहानी के लेखक हैं हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार पण्डित सुदर्शन। जिन्होंने कहानी की यथार्थता पर कल्पना का जो कलात्मक पुट दिया है—उससे कहानी की सरसता सौ गुनी बढ़ गई है। इतिहास के अनुसार सिकन्दर का उस्ताद अरस्तू ईरान तक नहीं आया था—पर यहाँ उसे ईरान में सिकन्दर के साथ बतलाया गया है। पण्डित सुदर्शन के सम्वादानुसार अरस्तू कहता है, 'अगर तू (सिकन्दर) दुनिया को फ़तह करना चाहे तो औरत को दुनिया से बच कर रह।' कारण यह कि एक ईरानी रमणी "रुखसाना" सिकन्दर के प्रेम में पड़ कर उसे गति-शिथिल कर रही थी।

सिकन्दर जब गुरु अरस्तू के उपदेश से प्रभावित होकर भारत वर्ष में आ चमकता है तो उसकी प्रेयसी रुखसाना रक्षा-बन्धन के दिन भारत के प्रतापी वीर राजा पुरु के महल में पहुँचकर पुरु को राखी बाँधती है और धर्म-बहन बन कर राजा पुरु को यह वचन देने पर मजबूर करती है कि सिकंदर हमारे हाथ से नहीं मरेगा। क्योंकि कहने को यह राखी रुखसाना ने पुरु को बाँधी है, पर ध्यान की आँखों से देखा जाय तो यह राखी ईरान ने हिन्दुस्तान को बाँधी है इस तरह पण्डित सुदर्शन की कल्पना ने

रुखसाना को पुरु की धर्म-बहन बनाकर—सिकन्दर और पुरु के बीच के अन्तर को कम करने के लिये रुखसाना को "प्रेयसी" और "बहन" के आदर्श रूप में लाकर बड़ी द्वन्द्व-पूर्ण मानवीय स्थिति में ला खड़ा किया।

अन्त में पण्डित सुदर्शन की प्रतिभा पुरु के सिर पर देश-प्रेम, वीरता, देश-गौरव, त्याग, कर्तव्य और "हारी हुई जीत" की आदर्श भावनाओं का सेहरा बाँधती है तथा सिकन्दर और पुरु का मानवीय एवं गौरवशील मेल-मिलाप करा कर उन दोनों के सार्वजनीन महामानव का परिचय देती है।

सिकन्दर की कहानी सुदर्शन जी ने उच्चकोटि की लिखी ही है, परन्तु संवाद तो ग़ज़ब के हैं। बस कमाल कर दिया। हमने शायद ही इतने सुन्दर सम्वाद सुने हों। संवादों की कवित्वमय भावुकता, दार्शनिक गंभीरता, साहित्यिक छटा बरबस प्रत्येक हृदय को मन्त्र-मुग्ध कर देती है। भारतवर्ष ने दिल खोल कर "पुकार" के संवाद-लेखक कमाल अमरोही की प्रशंसा की थी। अब "सिकन्दर" के अद्वितीय संवाद-लेखक पण्डित सुदर्शन की बारी है। फिर कहते हैं कि "सिकन्दर" के संवाद प्रत्येक दृष्टि से अद्वितीय हैं। एक एक पंक्ति हृदय में पैठ जाती है और झूमते ही बनता है। उदाहरणार्थः—

"तू ख़ूबसूरती के पास मोहब्बत का गाया हुआ नग़मा है।"

"बुढ़ापा देखता है और सोचता है; जवानी देखती है और बेक़रार होती है।"

"हो सकता है हम शाम के वक़्त जीत के डङ्के बजाते हुए आएँ, हो सकता है रात का चाँद हमें न देखे, हमारी लाश को देखे।"

"जब घर के दरवाज़े ही चोर के साथ मिल गए तो घर का क्या बनेगा।"

"फूलों के कान में बहार की कही हुई कहानी है" इत्यादि-इत्यादि।

गायन भी सुन्दर हैं। विशेष कर "उठ जाग जवानी आती है" और ज़िन्दगी है प्यार से, प्यार में बिताए जा" सुन्दर गायन हैं। इनकी कुछ पंक्तियों को चखिए—

"उठ तेरे घर फूलों की रंगीन कहानी आती है" "ज़िन्दगी है एक रात, प्यार उसमें है चिराग़, यह चिराग़ जितनी देर जल सके जलाये जा।"

इतने सुन्दर संवाद और गायन के लिये हम पण्डित सुदर्शन को भूरि-भूरि धन्यवाद और बधाई देते हैं। और पण्डित सुदर्शन की प्रतिभा का सदुपयोग लेने के लिए श्री सोहराब मोदी को भी धन्यवाद !

हाँ, सम्वादों की भाषा के बारे में हमें कुछ शिकायत है। वह यह कि जब यूनानी पात्रों के मुख से शुद्ध उर्दू बुलवाई गई है, तब भारतीय पात्रों के मुख से कतिपय उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुत खटकता है। क्योंकि "सिकन्दर" ऐतिहासिक चित्र है—अतएव उस समय के भारतीय पात्रों के मुख से उर्दू शब्द बुलवाना अस्वाभाविक मालूम होता है।

इस विषय पर हमारी पण्डित सुदर्शन से बात-चीत हुई और हमने उनके सामने यह शिकायत पेश की। पण्डित सुदर्शन ने जो कुछ कहा उससे मालूम हुआ कि फ़िल्म-क्षेत्र में कुछ ऐसा वातावरण है जो हिंदी-भाषा का विरोधी है। इस क्षेत्र में अधिकांश ऐसे मुसलमान और हिन्दू लेखक मौजूद हैं जो उर्दू के हामी हैं। ख़ास कर मुसलमान लेखक तो ऐसे हैं जिन्हें संस्कृत का सरल से सरल शब्द "लैटिन" भाषा का प्रतीत होता है। हिन्दू लेखक तो उर्दू का व्यावहारिक ज्ञान रखते भी हैं परन्तु अधिकांश मुसलमान लेखक संस्कृत का एक शब्द भी नहीं जानते और न जानने की इच्छा ही रखते हैं। फिर भला ऐसे लोग सिनेमा द्वारा किस तरह "राष्ट्र-भाषा" तय्यार कर सकते हैं। ऐसे लोग तो "उर्दू" को ही हिन्दुस्तानी और "राष्ट्र-भाषा" समझते हैं। हिन्दू लेखक—ख़ासकर यू० पी० के "हिन्दुस्तानी" लिखने के अधिकारी कहे जा सकते हैं क्योंकि उन्हें हिन्दी-उर्दू दोनों का ज्ञान रहता है। मुसलमान लेखकों को हिन्दी से कुछ मतलब ही नहीं। कितना अच्छा होता यदि श्री सोहराब मोदी, पण्डित सुदर्शन को "सिकन्दर" के भारतीय पात्रों के मुख से शुद्ध हिन्दी ही बुलवाने की स्वतन्त्रता देते। इससे संवादों में पूर्ण स्वाभाविकता आ जाती। हम श्री सोहराब मोदी से अन्त में यह कहना चाहते हैं कि यदि वे भारत के विद्वानों के जुटाए हुए तथ्यों को मालूम करें, यदि वे हिन्दी भाषा के विस्तृत प्रचार को देखें, यदि वे बङ्गाली, गुजराती, मराठी, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, तामिल

आदि संस्कृत-प्रभावित भाषाओं का विचार करें, यदि वे यह मालूम करें कि यू० पी०, विहार, मध्यभारत, मध्यप्रान्त में हिन्दी ही अधिक बोली-समझी जाती है, यदि वे मद्रास और पञ्जाब में भी हिन्दी के प्रचार का अन्दाज़ा लगाएँ तो उन्हें यह मालूम पड़ेगा कि भारत की अधिकांश जनता भारत की संस्कृति और सभ्यता को अभी जीवित रखनेवाली संस्कृत भाषा की पुत्री हिन्दी भाषा को ही अधिक जानती है। आशा है भविष्य में श्री सोहराब मोदी तथा भारत के अन्य प्रतिष्ठित निर्माता और निर्देशक, हिन्दी भाषा के प्रति होते हुए अन्याय और अत्याचार को रोक कर, करोड़ों हिन्दी भाषा-भाषियों की सच्ची सहानुभूति प्राप्त करेंगे।

रात को ३ बजे तक बातें होती रहीं। आश्चर्य की बात है, तिवारी जी हमें दूसरे दिन के लिये नेशनल स्टूडियो में बुलाकर उसी समय चल पड़े।

सुबह हम उठे ही थे कि हमारे पुराने दोस्त और न्यूथियेटर्स की 'आँधी' के नायक मि० मुज़म्मिल को अपने कमरे में आये हुए पाया। मि० मुज़म्मिल हमें चाय पर बुला कर चले गये, वे नागर जी के मकान के सामने ही समुद्र के एक दम किनारे पर प्रसिद्ध फ़िल्म स्टार मिस बिब्बो के साथ उसी मकान में रहते थे।

करीब ६ बजे हम लोग श्री मुज़म्मिल के यहाँ चाय पीने के लिये गये। चाय पीते-पीते मिस बिब्बो से भी मुलाक़ात हो गई और चाय के साथ ही अन्य किसी विषय पर तो नहीं केवल चाय के मामले पर बातचीत हुई, बातचीत बड़े मज़े की हुई, किन्तु यहाँ

उल्लेख करना व्यर्थ है। हाँ, मिस बिब्बो बड़ी ही खुश-मिजाज़ और हास्यप्रिय हैं, उन्हें दूसरों से बातें करने में उतना ही आनन्द आता है जितनी मीठी उनकी बातें होती हैं।

वहीं से हमने कुछेक फ़िल्म-कम्पनियों और मित्रों के लिये टेलीफ़ोन भी किया। वहाँ से हम बाहर आही रहे थे कि मिनर्वा की प्रसिद्ध स्टार शीला से भेंट हो गई। उनके फ़िल्मी रूप और असली रूप का बेजोड़ मिलान देख कर हमें आश्चर्य हुआ।

मैंने मि० मुज़म्मिल से पूछा—यहाँ क्या फ़िल्म-कम्पनियों के स्टार अधिक तादाद में रहते हैं ?

तो मि० मुज़म्मिल ने जवाब दिया कि, यह तो फ़िल्म-कोलोनी है। बहुत से स्टार यहाँ ही रहते हैं।

हम लोग स्नान करने के बाद दिन में नेशनल स्टूडियो में सबसे पहले डाइरेक्टर रामचन्द्र के कमरे में गये। बहुत से आर्टिस्ट वहाँ जमा थे। हम से परिचय होते ही सभी का ध्यान हमारी ओर मुड़ा, और हमने 'सिविलमैरेज' फ़िल्म के एक विषय को लेकर डाइरेक्टर रामचन्द्र से बातें कीं।

हमारा कहना था, "सिविल मैरेज़ की कहानी में एक बड़ा भारी दोष है !" और हमने उन्हें वह दोष समझाया जिसे डाइरेक्टर ठाकुर ने विशेष रूप से समझा।

उसी कमरे में बम्बई की बहुत पुरानी हीरोइन नूरजहाँ बैठी थीं और हम से उनके परिचय के समय ग़लती हो चुकी थी। हम उन्हें सितारा समझ बैठे थे। क्योंकि उन दोनों की शक्ल में कुछ

भी भेद न था। किन्तु उसी समय जब यह भेद खुला तो हमें काफ़ी झेंपना पड़ा।

इस नौजवान डाइरेक्टर के कमरे में हमें २-१ बातें काफ़ी मज़ेदार सुनने को मिलीं।

एक साहब काफ़ी मोटे-तगड़े गोरे रङ्ग के उस कमरे में उपस्थित हुए ही थे कि ठाकुर साहिब ने हम लोगों से उनका परिचय कराया—"आप सिनेमा स्टोरी रायटर हैं।"

वे सज्जन बोल उठे—"अब तो साहब मैंने कहानियाँ लिखने को कसम खा ली है।"

मैंने पूछा—"कौन कौन-सी कहानियाँ अब तक आपने लिखी हैं?"

उन सज्जन ने कहा—"जी अब तक तो लिखी नहीं है, पर हाँ इरादा कर रहा था।"

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"तो अब कसम क्यों खा ली है?"

"अजी साहब कौन रहे खुशामद करता!"

उत्तर सुन कर मुझे हँसी आरही थी कि यकायक नूरजहाँ के मुँह से यह सुनकर कि "मैं तो हिन्दुस्तानी फ़िल्में एक दम ही नहीं देखती, हाँ अगर कोई सर हो जाय तो तब कभी जाती हूँ, वह भी अगर 'न्यूथियेटर्स' की फ़िल्म हो तो।"

'नेशनल स्टूडियो' में डाइरेक्टर रामचन्द्र ठाकुर के रूम से होकर मैं वहाँ के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री चिमनलाल देसाई के पास श्री तिवारी जी को लेकर आया। श्री देसाई से तिवारी जी ने

मेरा परिचय कराया। श्री देसाई उस वक्त इतने व्यस्त थे कि उन्हें किसी से बातें करने की फुरसत नहीं थी, फिर भी कुछ क्षण उन्होंने मुझ से बातें कीं, और उन्होंने मुझे दूसरे दिन मिलने का निमन्त्रण दिया।

वहाँ से मैं उठने वाला ही था, कि पूर्व परिचित नूरजहाँ, जिन्हें मैंने भूल से सितारा समझ लिया था, वहाँ पर बड़ी गौर से मुझे देखती हुई आईं। मैं उठ ही रहा था कि वे बोलीं—"एक मिनिट !"

इस समय श्री देसाई किसी से टेलीफ़ोन करने में व्यस्त थे।

नूरजहाँ मुझ से कुछ कहना चाहती थीं, कि मैंने देखा श्री फ़ज़लभाई आगये हैं और मैं नूरजहाँ से 'अभी आता हूँ' कह कर चला गया।

श्री फ़ज़ल भाई से कलकत्ते में फ़िल्मों की पब्लिसिटी के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी। उन्होंने भी नेशनल की प्रगति के बारे में बहुत कुछ कहा। नेशनल के दो नये स्टुडियो बने थे, उन्हें भी देखने को कहा, तिवारी जी को लेकर मैं उन नये स्टुडियो में गया। मैंने उन स्टुडियों को अपने ढंग का निराला ही पाया। स्टुडियो तैयार हो चुके थे, किन्तु कुछ कार्य समाप्त नहीं हुआ था।

उस दिन यह देखकर हमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि नये स्टुडियो के अन्दर बहुत से ब्राह्मण होम कर रहे थे। वेद-पाठ हो रहा था, लेकिन यह वेद-पाठ किसी सीन का नहीं था, बल्कि

नये स्टुडियो के श्रीगणेश का समारम्भ था। एक धार्मिक तृप्ति के साथ मैं वहाँ से लौटा और नेशनल के लम्बे-चौड़े आफ़िस में हाथ में लाठी लिये कुछ-कुछ लंगड़ाते श्री सुरेन्द्र को देखा। हरीश और भूडो अडवानी, जहूर राजा, शेख़ मुख्तार, डाइरेक्टर कारदार, मिस रोज़ आदि सभी से एक साथ ही मुलाक़ात हो गई। इसके बाद हम नेशनल के पब्लिसिटी आफीसर श्री बाबू भाई से मिले—उनसे पब्लिसिटी को लेकर बहुत देर तक वाद-विवाद हुआ। उन्होंने समझाया कि किस प्रकार नेशनल चित्रों की पब्लिसिटी बम्बई में की जाती है। सारा प्लान समझने के बाद हमें उनकी निपुणता पर खुशी हुई।

बम्बई के प्रचार-सम्पादक केवल हिसाब किताब को रखते हैं और लेआउट बनाने वाले अलग-अलग भाषा के अलग-अलग आदमी रखे जाते हैं। वहीं हमारी मुलाकात 'वेणी' नामक गुजराती साप्ताहिक के सम्पादक श्रीसुन्दरलाल पण्ड्या से हुई। उन्होंने "विचार" को बहुत ही दिलचस्प पत्र बताया।

'नेशनल' से विदा होकर हम लोग "चित्रपट" गुजराती और "मिरर" अंग्रेज़ी पत्र के कार्यालय में गये। वहाँ श्री नगीनलाल शाह से हमारी मुलाकात हुई। इतने दिनों तक हमने भाई नगीनलाल शाह का नाम ही नाम सुना था उनसे मिलने का सौभाग्य पाकर हमें और उन्हें दोनों को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई।

भाई नगीनलाल शाह से हमारी फ़िल्म-व्यवसाय के मुताल्लिक कई प्रकार की बातें हुई। "मिरर" के सम्पादक भाई कुलकर्णी से भी उसी समय मुलाक़ात हुई।

भाई नगीनलाल शाह का कहना था कि फ़िल्म-व्यवसाय में इस प्रकार के व्यक्ति घुसे हुए हैं, जिन की प्रशंसा की जाय तो वे हमारे साथ-साथ फ़िल्म व्यवसाय का भी अहित करने को तैयार हो जाते हैं। वे लापरवाह हो जाते हैं, इसलिए समय-समय पर उनकी ख़बर लेते रहना—किन्तु सचाई के साथ—फ़िल्म-व्यवसाय के लिए अच्छा होगा!

उन्होंने इसी सिलसिले में कुछ पत्रकारों की ओर भी इशारा करते हुए फ़रमाया कि, वे लोग बड़ी कमीनी भावना को लेकर पत्रकार बने हैं, यहाँ तक कि वे अपने जाने या खाने का निमन्त्रण खुद ही किसी एक्ट्रेस के घर पर देते हैं। उन्होंने और भी उदाहरण दिये। मैं उनका उल्लेख नहीं करूँगा।

भाई नगीनलाल शाह ने एक दिन पहिले हमें भोजन का निमन्त्रण दिया था, इसलिए उक्त बातों के साथ-साथ हमारा भोजन भी समाप्त हुआ। हम जब 'चित्रपट' आफ़िस से लौटे तो हमारे मन में इस बात की दृढ़ धारणा बन गई कि भाई नगीनलाल शाह वास्तव में हम पत्रकारों के अगुआ और मुखिया हो सकते हैं। हमें उसी समय यह भी याद हो आया कि पत्रकारी कोई सहज काम नहीं। फ़िल्म-इण्डिया के श्री बाबूराव पटेल की तरह यदि रोब-दाब से रहा जाय तो शायद हम लोगों का भला हो सकता है।

श्री पटेल का कहना है कि ये सब लोग (फ़िल्म-निर्माता) पक्के व्यापारी हैं। ये लोग जब सभी बातों में अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं तो हम क्यों इनके पीछे रहें।

नेशनल स्टूडियो के मैनेजिंग डाइरेक्टर के रूप में हमारे मित्र पं० इन्द्र जी ने श्री बाबूराव पटेल से मेरी मुलाकात कराई थी। हट्टे-कट्टे शरीर वाले, लम्बे-तगड़े श्री बाबू राव पटेल को देख कर और उनसे ५-१० मिनिट ही बातें करके हमें वास्तव में आनन्द हुआ था।

बम्बई की सड़कें अन्धकार से दब आई थीं। ब्लैक आऊट के कारण बम्बई की सारी रौनक किरकिरी लगती थी। हमें क्षोभ होता था कि क्या हमारे ही लिए बम्बई को अँधेरी बनना था— फिर भी हम आगे बढ़ रहे थे। भाई शान्ति प्रसाद जी नैथाणी और श्री सीताराम शर्मा मेरे साथ थे।

वहाँ के "गढ़वाल भ्रातृ-मण्डल" ने मुझे सम्मानित करने का आयोजन किया था। रात्रि को ८ बजे मण्डल की मीटिंग थी। हम लोग वहीं जा रहे थे।

वहाँ पहुँचते ही सभी गढ़वाली भाइयों ने हार्दिक उत्साह से मुझे अपनाया। भाई शान्ति प्रसाद जी नैथाणी ने स्वागत वचनों के साथ साथ मेरी प्रशंसा में न जाने क्या क्या कह दिया। यद्यपि किसी भी भले आदमी को अपनी प्रशंसा अपने ही सामने कुछ अच्छी नहीं लगती, किन्तु मुझे अपने ही भाइयों के बीच नैथाणी जी की प्रशंसा-वाणी अच्छी लग रही थी।

जब मुझ से कहा गया और जैसे कि सभ्यता के लिहाज़ से मुझे कम से कम स्वागत का उत्तर देना ही था, तो उसी समय मुझे पूर्व-कथित भाभी जी की याद आ गई। उन्होंने रात को भोजन

पर मुझे बुलाया था। भोजन की तो कोई चिंता न थी, मगर उनकी नाराज़ी की मुझे चिंता थी। वे बिना कारण समझे मुँह भारी कर लिया करती थीं, और मित्र महोदय के सामने उनके भारी मुँह पर हास्य की छटा लाने का उपाय करना ज़रा अनुचित जान पड़ता था। इसलिए किसी तरह दो-चार बातें कह कर और मिष्टान्नादि से निपट कर हम लोग 'वी० टी०' की ओर चले।

भाई शान्तिप्रसाद जी का कहना था कि "जब भोजन की इच्छा नहीं है तो भाभी जी के पास जाना व्यर्थ है—चौपाटी की ओर चला जाये।"

किन्तु मेरी समझ में ये सब वैरागियों की सी बातें थीं। इसके अलावा रात के अँधेरे में चौपाटी को क्या देखते?

होटल में जाते ही देखा भाभी जी बड़ी व्यग्रता से हमारी प्रतीक्षा में हैं, और दस बज चुका है। छूटते ही वे बोलीं—"मालूम होता है स्वागत में हमारी याद नहीं रही।"

"याद न रहती तो यहाँ कैसे आते?"

"बड़ी दया!...आज मैं आपका 'भरोसा' देख कर आ रही हूँ। मुझे वह फ़िल्म बेहद पसन्द आया। आपने देखा है?"

"हाँ मुझे भी बहुत पसन्द आया। मैं तो कह सकता हूँ कि 'भरोसा' इस वर्ष का श्रेष्ठ चित्र है।"

"श्रेष्ठ तो ज़रूर है मगर सर्वश्रेष्ठ तो कैसे कहा जाय?"

"उसकी कहानी एक दम नई है। डायरेक्शन में बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया गया है। अच्छा यह तो बताइये कि भाई साहब कहाँ गये हैं।"

"वे ६॥ का शो देखने किसी अंग्रेज़ी सिनेमा में गये हैं।"

"और आप क्यों नहीं गईं ?"

"आप को जो बुलाया था, फिर अँग्रेज़ी फ़िल्मों को देखने में मेरी रुचि भी नहीं है।"

खाना आया। भाभी जी के साथ हम लोग एक ही साथ एक टेबुल पर खाने को जमे।

इसी समय एक युवती ने उस कमरे में प्रवेश किया। सलवार पहने होने से यह जानने में देर न लगी कि युवती पञ्जाब की रहने वाली है।

उसने आते ही भाभी जी से कहा—"अच्छा, आप ही हैं जिनके लिए "तुसि" कहते थे।" युवती पञ्जाबी में कहती थी, और भाभी जी ने कहा—

"हाँ, यही हैं"—भाभी जी ने फिर कहा—"मैं इनसे आपका परिचय करा दूँ। ये पंजाब से अकेली आई हैं, फ़िल्मों में काम करेंगी। मैंने आपका इनसे परिचय पहले ही दे दिया है। इस बेचारी का कहीं काम करा दीजिये।"

युवती मेरी ओर "नमस्ते" करके चारपाई पर बैठ गई। उसकी असाधारण सुन्दरता में कोई सन्देह नहीं था। सन्देह इस पर था कि वह अकेली यहाँ तक कैसे आई।

मैंने कहा—"आप अकेली आई हैं ?"

वह बोली—"छोटा भाई साथ में है !"

युवती हिन्दी का एक भी शब्द नहीं बोल पा रही थी। मैंने

भी टूटी-फूटी पञ्जाबी में उससे बोलना आरम्भ किया। भाभी जी मेरी पञ्जाबी पर मुँह भर कर हँसती जा रही थीं।

किन्तु मैं उनके हँसने की पर्वाह नहीं कर रहा था। मैंने उस युवती से पूछा—"आप क्यों चली आई हैं, क्या होगा फ़िल्मों में काम करके ?"

युवती का चेहरा लाल हो आया, वह भाभी जी की तरफ़ देखने लगी। भाभी जी ने मेरे कान में कहा—पीछे बता दूँगी।"

मैंने बात दबा दी, और कहा—"आप क्या हिन्दी नहीं बोल सकतीं ?"

युवती ने कहा—"कभी बोलने का मौका नहीं पड़ा, इस लिए रफ्त नहीं, मगर सीख लूँगी।"

इस वाक्य को युवती ने अर्ध शुद्ध हिन्दी में कहा।

मैंने पूछा—"आप गाना जानती हैं ?"

वह बोली—"थोड़ा-थोड़ा।"

मैंने पूछा—"तो बताइए मैं आपकी क्या मदद करूँ?"

युवती भाभी जी के चेहरे की ओर ताकने लगी। शायद वह मेरा अभिप्राय न समझी।

भाभी जी मेरी ओर देख रही थीं।

भाभी जी ने कहा—"कहीं बेचारी का इन्तज़ाम करा दीजिए, आपके तो बहुत से डाइरेक्टर परिचित हैं।"

मैंने कहा—"किसी पञ्जाबी चित्र में इन्हें काम मिल सकता है। इस समय कलकत्ते में कई पञ्जाबी चित्र बन रहे हैं, वहाँ यदि चाहें तो मैं किसी से कहूँ ?"

युवती बोली—"कहीं भी हो, मुझे अपने साथ ही लेते चलिए, आपका गुण मानूँगी।"

अपने साथ ले जाने की बात बड़ी टेढ़ी थी। ज़रा सी बात पर बहुत बड़ी बातें हो जाया करती हैं, फिर मैं न तो किसी फ़िल्म कम्पनी का डाइरेक्टर हूँ न मालिक! किस हालत में एक युवती को साथ ले जाऊँ?

मैंने भाभी जी से कहा—"मैं कोशिश करूँगा।"

युवती उसी समय अपने कमरे में गई और एक फ़ोटो लाकर मेरे हाथ में दे गई।

खाना हम लोगों का समाप्त हो चुका था। भाभी जी का आग्रह था कि रात भर होटल में बैठ कर गप्पें लगाई जायँ परन्तु यह मुमकिन न था, दिन भर की थकावट शरीर को तोड़ जा रही थी। जबरन् बिदाई लेकर हम लोग भाई शान्तिप्रसाद जी के निवास-स्थान शान्ताक्रुज में पहुँचे। जाते ही ज्ञात हुआ कि बम्बई की फ़िल्मों के प्रसिद्ध संवाद, गायन व कथानक लेखक श्रीयुत पं० इन्द्र वहाँ पधारे थे और मेरी खोज कर गए थे और कल प्रातः काल आने का वादा कर चले गए।

बिस्तर पर पड़ते ही भाई शान्तिप्रसाद जी रसिकता भरे शब्दों में बोले—"क्यों भई, होटल की याद तो नहीं है, सब कुछ भूल कर सो रहो, तबियत खराब न हो जाय।"

मैंने कहा—"आपकी बातों में अभी तक तो याद नहीं थी, पर अब याद आ गई है।"

हँसते हुए हम सभी निद्रा देवी की गोद में मग्न हो गए।

मैं सुबह उठते ही आँखें मल रहा था कि 'रंजन' मेरे पैरों के पास खड़ी मुझे उठाने का प्रयत्न कर रही थी। मेरे उठते ही वह खिलखिला उठी।

वह रंजन—तीन चार वर्ष की, भाई शान्तिप्रसाद जी के गुजराती पड़ोसियों को लड़की थी, इतनी चंचल, इतनी शोख़ और इतनी अच्छी कि उसे हर वक्त देखते रहने का ही दिल चाहता था। जब तक हम लोग वहाँ पर रहते तब तक वह भी वहीं पर हम लोगों के साथ तरह-तरह की बातों में लगी रहती। वह अपनी ही बात में मस्त रहती और हम अपनी में।

उसकी तुतली गुजराती बोली हमें बहुत ज़्यादा सुहाती। उसे गोद में उठाते ही ऐसा लगता मानो सम्पूर्ण निधि हमारे ही गोद में है। किन्तु दुख इस बात का था कि हम दिन भर उसी को गोद में लिये नहीं रह सकते थे।

भाई शान्तिप्रसाद के साथ ही देहरादून के श्री रानाजी भी रहते थे, वे वहाँ के दैनिक पत्र "जन्मभूमि" के आफिस में लाइनो आपरेटर हैं, और लिखने पढ़ने के बेहद-शौकीन। कई अलमारियाँ बड़ी-बड़ी पुस्तकों से भरी थीं। बम्बई के प्रायः सभी पत्रों में उनके लेख—हर विषय पर निकलते रहते हैं। आपके लिखने का अपना ही ढङ्ग है और बड़ा ही आकर्षक है। कुछ देर तक उन्हीं से 'नारी-तत्व' पर मेरा तर्क चल रहा था कि इसी वक्त भाई शान्ती-प्रसाद जी की शिष्यायें जो पञ्जाब की ही रहने वाली थीं

और बम्बई में रहती थीं—वहाँ पर आईं। उनसे परिचय प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता हुई। भाई नैथाणी जी की दोनों शिष्यायें हिन्दी प्रभाकर परीक्षायें पास थीं और अन्यान्य भाषाओं की भी काफ़ी योग्यता उन्हें प्राप्त थी। 'विचार' पत्र की कापी उठाते ही उन्होंने उसे काफ़ी पसन्द किया और मुझ से विचार की बहुत सी प्रतियों को उन्होंने ले लिया। इस प्रकार के विद्या-व्यसनियों से परिचय प्राप्त करके मुझे वास्तविक खुशी हुई।

इसी समय पं० इन्द्र जी ने दर्शन दिये। और हम लोग इन्द्र जी के साथ-साथ उनके निवास-स्थान पर पहुँचे। उन्होंने हमें "घर की रानी" की फ़ाइल बताई, जिसे देख कर हमारी यह धारणा पुष्ट हुई कि पं० इन्द्र ने उसके सम्वाद और गायन केवल मराठी से ही नहीं अनूदित किये हैं बल्कि उन्होंने अधिकांश भाग अपनी ओर से प्रस्तुत किया है।

समझा कुछ जाता है, देखा कुछ जाता है। हम कलकत्ते वालों के दिमाग में इन्द्र जी के लिये पहले ही से एक प्रकार का भ्रम सा हो गया था, वे सम्वाद लेखक हैं—और आम तौर पर बम्बई के सम्वाद-लेखकों का स्थान कुछ नहीं के बराबर है, यद्यपि हम पण्डित जी के सम्वादों को सुनकर अन्यान्य सम्वाद-लेखकों से उन्हें ऊँचा ही स्थान देते थे, किन्तु आज उनसे मिलकर उनके अगाध पाण्डित्य और प्राकृतिक साहित्य-प्रेम का जो प्रभाव हम पर पड़ा, वह पहले नहीं के बराबर था और वह शायद इस लिये कि वे चित्रों के सम्वाद-लेखक हैं और बम्बई के।

'हंस पिक्चर्स' के 'धर्मवीर' 'प्रेमवीर' 'ब्राण्डी की बोतल' आदि चित्रों के बाद जब हमने सन्त तुलसीदास की कहानी, गायन और सम्वादों को पर्दे पर देखा तो हमारे मन में पंडित जी से मिलने की इच्छा हुई थी। आलोचकों का कहना था कि पंडित जी ने 'तुलसी दास' चित्र में तुलसीदास की पदावलियों को छोड़कर अपने गाने देकर बड़ी भारी भूल की है—"वन चले राम रघुराई" भला ये भी कोई कविता है—

हम उसी समय आलोचकों से सहमत नहीं हो पाये थे क्योंकि हमें तुलसीदास के गायनों ने मुग्ध कर दिया था। अगर उन गायनों के स्थान में रामायण की ही चौपाइयाँ दी जातीं तो सम्भवतः उनका इतना असर न होता क्योंकि ठीक स्थान पर ठीक चौपाई का मिलना कठिन हो जाता—साहित्य और चीज़ है, सिनेमा और चीज़। इन्द्र जी ने इस बारे में हमसे कहा—महात्मा तुलसीदास जैसे दैविक कवित्व शक्ति सम्पन्न महापुरुष के ऊपर कलम चलाने का या अपनी कविताओं से उन्हें दबाने का प्रयत्न मैंने नहीं किया, अपितु सिनेमा को देखकर तुलसीदास के गायनों को उसी ढाँचे में ढालने का प्रयत्न किया है, उन्होंने हमें प्रसङ्ग बता कर यह सब कुछ बताया और उसे हमें मानना ही पड़ा।

इसमें सन्देह नहीं कि इन्द्र जी के अन्दर कहानी और गायन लिखने की स्वाभाविक क्षमता है। उनकी बोल-चाल की भाषा में इस क्षमता का अनुभव हमने पाया—कुछ एक का ख्याल है कि उन के अनुवाद में मौलिकता का अभाव है। किन्तु हमें उन्होंने अपने

पिछले सम्वाद गायनों में बताया कि उनमें मौलिकता लाने का उन्होंने कितना प्रयत्न किया, और जहाँ तक हमने देखा दूसरों की कहानियों के सम्वादों में उन्हों ने जो कुछ भी मौलिकता प्रदान की है वह कितनो श्रेष्ठ और कितनी मनोरञ्जक है।

'घर की रानी में'—'मेरी मेंहदी रङ्गले आई "सहेली साँझ दियाबाती" आदि उनके अपने मौलिक भाव हैं। इनके अलावा उनकी मौलिक रचनाओं में जो उन्होंने विभिन्न फ़िल्म कम्पनियों को दी है जैसे 'अरमान' नामक कहानी में जो उन्होंने बम्बई टाकीज़ को दी है—सुदामा का 'भाई बहन' आदि में हमने कथानक और गायन सम्वाद में जो कुछ सुना, हम दावे के साथ कह सकते हैं उनमें हमें सभी चीज़ें नवीन मिलीं, जिन्हें हम फिल्म जगत के परिवर्तन की चीज़ें कह सकते हैं।

इस अगाध पाण्डित्य के अलावा पण्डित इन्द्र जी में एक और चीज़ है और वह है मित्रता। वह परिचित के मित्र हैं अपरिचित के मित्र हैं और मानवता के मित्र हैं। दुबला पतला लम्बा शरीर, मुख पर भावों की छाया; लम्बी नाक, सुदीर्घ आँखें और विशुद्ध शान्त मूर्ति—हमने उन्हें हरवक्त कुछ भावनाओं के समुद्र में गोते लगाते पाया। बम्बई के प्रवास में एक विशुद्ध साहित्यिक से मिल कर हमने जो आनन्द लाभ किया, उसे हम आज ही समाप्त नहीं कर सकते।

यह दिन हमारे काम का सबसे ज़्यादा व्यस्त दिन था। प्रकाश स्टूडियो, पैरामाउण्ट, मोहन आदि स्टूडियो में जाना था,

और हम अँधेरी की ओर सर्व प्रथम प्रकाश में पहुँचे। 'नरसी भक्त' के डाइरेक्टर श्री विजय भट्ट से परिचय किया।

'प्रकाश पिक्चर्स' के प्रचार अध्यक्ष श्री मुगनी के सहायक मि० आदिल ने हमें विजय भट्ट से मिलाया। श्री भट्ट कुछ विचारों में डूबे हुए गुम-सुम बैठे थे—नई जवानी, किन्तु भावनाओं से परिपूर्ण, बत्तीस वर्ष की उम्र वाली छोटी-छोटी काली-कली गोल आँखें। और हमने पूछा—"क्या संत चित्रों को देकर आप समझते हैं आप दुनियाँ में एक आदर्श की सृष्टि कर रहे हैं?"

"क्यों नहीं? हमारे प्राचीन संतों का आधार ही तो आदर्श था!"

"मगर आप जानते हैं, आपके सभी संत ईश्वर की विशेष कृपा के आधार पर आदर्श स्थापित कर सके हैं, और चूँकि हम वैसा न कर सकते इस लिये हम उन सन्त और भक्त चित्रों से कुछ भी नहीं ले सकते?"

"हमें सन्तों के ईश्वरमय कार्य कलाप को लेने की ज़रूरत नहीं, हमें तो उनके कार्यों का निचोड़ रूपी आदर्श लेना है। आप नरसी भक्त को देखिये और फिर मेरी बात की सत्यता पाइये। और सब से बड़ी बात तो यह है कि हमारे देश की जनता यही चाहती है इसलिये हमें वही देना है, फिर बॉक्स-ऑफिस की ओर भी तो ध्यान देना होगा!"

बॉक्स-आफिस का नाम सुनते ही हमने और कुछ पूछना व्यर्थ समझा। ठीक ही तो है जो कम्पनी बीस-बीस हज़ार रुपये

एक-एक आर्टिस्ट को देकर चित्र तैयार कराती है, वह निरा आदर्श ही दुनिया को दान करती फिरे और अपना कुछ स्वार्थ न देखे, यह असम्भव सी बात है। श्री विजय भट्ट ने कहा—"Sentiment and life is greater than art"—हम अगर भारत की भावना को जाग्रत करने की कोशिश करते हैं तो उन चित्रों का क्या करें जिनमें आर्ट की वाह वाही लूटी जाती है !"

मैंने कहा—"स्टण्ट चित्रों के बारे में आपका क्या ख्याल है ?"

"हमारे देश की जनता की एक श्रेणी ऐसी है जो स्टण्ट चित्रों को पसन्द करती है। फ़ायदा चाहे उनसे कुछ न हो, पर देखते हुए आनन्द तो आही जाता है। फिर भी मैंने अब स्टण्ट चित्रों को बनाना हमेशा के लिये छोड़ दिया है और 'नरसी भक्त' मेरी कार्य-विधि के परिवर्तन का श्री गणेश है।"

"आपका अगला चित्र क्या होगा ?"

"मेरा आगामी चित्र देहज-प्रथा पर—एक विशुद्ध सामाजिक चित्र होगा !"

श्री भट्ट की मुखाकृति और उन पर पड़ी हुई भावनाओं की छाप को देखकर यह सहज ही अनुमान लगा लिया जा सकता है कि वे निकट भविष्य में कुछ कलात्मक चीज़ों के देने में पूर्ण समर्थ होंगे! और आज भरतमिलाप, राम राज्य जैसी कलापूर्ण चित्र हमारी उस अनुमान की सफल कृतियाँ हैं।

वहीं पर श्री पी० जयराज से भी कुछ क्षण बातें हुईं। 'माला' का काम समाप्त हो चुका था। श्री विजयभट्ट सोच रहे थे कि "भरत मिलाप" बनाया जाये या 'दहेज प्रथा' पर कोई फ़िल्म ? अन्त में दोनों ही चित्रों का बनना प्रकाश में आरम्भ हुआ।

हमारे साथ श्री मुज़म्मिल थे। वे हमें प्रकाश से मोहन स्टूडियो ले गये, और उन्होंने हमारा परिचय श्री भाई रमणीक लाल मोहनलाल से कराया। साथ ही उन के प्रचार अध्यक्ष श्री कन्थारिया से भी हम लोग मिले।

भाई रमणीक लाल ने हमें विश्वास दिलाया कि अब वे "स्टण्ट फ़िल्मों को बनाने से हाथ खींच लेंगे और सामाजिक चित्रों की ओर ध्यान देंगे।"

इसके बाद हम लोग पैरामाउण्ट स्टूडियो में गये। वहाँ की अस्त-व्यस्तता का कुछ अच्छा असर हमारे मन पर नहीं पड़ा, यद्यपि वहाँ के पब्लिसिटी आफ़ीसर ने हमारे स्वागत-सत्कार में किसी प्रकार की कमी नहीं की थी !

अँधेरी से होकर हम लोग, आचार्य अत्रे के आमन्त्रणानुसार परेल में 'हिन्दुस्तान स्टुडियों' गये। उस दिन उनके प्रथम चित्र "चरणों की दासी" का शूटिंग आरम्भ हो रहा था। डाइरेक्टर गजानन जागीरदार पूना से "पड़ोसी" का काम समाप्त करके उसी दिन बम्बई लौटे थे।

हम वहाँ पर आचार्य अत्रे, श्री जागीरदार, श्रीमती वनमाला आदि से उनके नवीन उद्योग के बारे में बातें कर रहे थे।

श्री अत्रे ने बताया किस कि प्रकार उन्होंने 'नवयुग चित्रपट' लि० की स्थापना की और किस प्रकार उन्हें प्रभात से 'सम्बन्ध' विच्छेद करके अपना कार्य आरम्भ करना पड़ा और कितने कम समय के अन्दर-अन्दर, इसी वक्त श्री पृथ्वीराज भी उनके उस श्रीगणेश में सहयोग देने के लिये वहाँ पर पधारे।

आचार्य अत्रे कहते थे कि—"भाई पृथ्वीराज, मेरे कालि-दास में आपको आना ही पड़ेगा!"

और पृथ्वीराज मुस्कराकर कहते थे, "आपके आह्वान की उपेक्षा कैसे कर सकूँगा। किन्तु मैंने यह निश्चय कर लिया है कि एक समय में कुल २ चित्रों में ही काम करूँगा।"

इसके वाद आचार्य अत्रे ने अपनी आज तक की सभी रचनाओं की लिस्ट हमें दी और कहा कि इन पुस्तकों को आप अवश्य पढ़िएगा।

कमेटी समाप्त होते ही हम लोग 'सिर्को' के स्टुडियों में गये, श्रीमती दुर्गा खोटे और श्री चन्द्र मोहन से मिलने का समय निश्चित था किन्तु हमें दुख हुआ कि हम निश्चित समय के दो घंटे वाद सिर्को में पहुँचे जब कि सिर्को स्टुडियों में कोई न था, दरवान से पता लगा कि उक्त दोनों कलाकार कुछ ही क्षण हुए किसी की प्रतीक्षा करके चले गये हैं।

सिर्को के सामने ही 'वाडिया' का विशाल स्टुडियो नज़र आया। हम लोगों ने अपनी गाड़ी उधर ही घुमाई। और लवजी कैसेल के अन्दर प्रविष्ट होते ही हमें मालूम हुआ कि डाइरेक्टर

मधुबोस "राजनर्तकी" के शूटिंग में व्यस्त हैं, उनके सहकारी। और पुराने मित्र श्री बेचु चटर्जी तथा हमारे मित्र व बंगाल के प्रसिद्ध आर्टिस्ट श्री सुधांशु चौधरी से हमारी मुलाकात हुई। आन्तरिक मित्रों के सामने मर्यादा भूल जाया करती है, इसीलिये हम लोगों की अपनी-अपनी ओर से घरू बातें हुईं। इन्हीं बातों में राजनर्तकी जैसी अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म के शूटिंग को देखना भी हम भूल गये। हम लोगों की बातें चल ही रही थीं कि मि० नयम्पल्ली वहाँ पर आये, परिचय हुआ और बातें हुई।

मि० नयम्पल्ली ने हमें आग्रह-पूर्वक अपने साथ उनके घर चलने का अनुरोध किया। हम लोग कार में बैठ और "राज-नर्तकी" में उनके रोल के विषय में बातें करते उनके घर पर पहुँचे।

वहाँ उन्होंने अपने एक ८ वर्ष के बच्चे की ओर इशारा करके कहा,—यह मेरा बच्चा है, और बच्चे ने नमस्ते किया—एक टाफ़ी हमारे हाथ में थमानी चाही।

हम मुस्कराये।

मि० नयम्पल्ली ने कहा—"बच्चे का अनुरोध रखने के लिये—

हमने टाफ़ी ले ली, बच्चा खुश होकर चला गया।

और हमारी नज़र 'लीला भवन' के उस साफ सुथरे कमरे के चारों ओर घूमीं। एक बड़ी-सी तस्वीर लगी थी, किसी अमेरिकन आर्टिस्ट द्वारा निर्मित। यह चित्र शायद इसलिये लगा हुआ था कि यदि हम स्वास्थ की ओर ध्यान दें तो हमारा शरीर कितनी उन्नति कर सकता है।

हमने पूछा—स्वास्थ्य, व्यायाम की ओर भी आपकी दिलचस्पी है ?

उन्होंने कहा—"हाँ मैंने फिज़ीकल कल्चर इन्स्टीच्यूट नामक संस्था को खोला है। इस संस्था के प्रेज़ीडेंट सर इब्राहीम रहीमतुल्ला है। मेरी इसमें दिलचस्पी ही नहीं, मैंने इस विषय का काफ़ी अध्ययन किया है और अमेरिका की एक फिज़िकल संस्था से उपाधि भी प्राप्त की है।"

इसके बाद श्री नयम्पल्ली ने हमें बहुत से लेख दिखाये जो कई प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में छपे थे। मि० नयम्पल्ली के कुछ लेखों को हमने अपने साथ ले लिया और उनका अध्ययन किया। हमें उनमें ऐसी कुछ बातें मिलीं जिन्हें हम एक फ़िल्मी कलाकार से तो कभी भी पाने की आशा नहीं कर सकते।

हमारा नशा काफूर हो गया। कहाँ जम्बो का बनमानुष, ज़िंगारों का कुबड़ा, स्टण्ट किंग नयपल्ली और कहाँ उसका यह साहित्य। इस लिये विश्वास होता है कि राक्षस रावण ने भी अवश्य वेदों का भाष्य लिखा होगा।

हमने पूछा, "आप कहाँ के बाशिन्दे हैं ?"

उत्तर मिला, "साउथ इण्डिया के हम ब्राह्मण हैं।"

मैंने पूछा, "आप हिन्दी जानते हैं ?"

उन्होंने कहा, "हाँ, क्यों नहीं जानता। हिन्दी फिल्मों में काम जो करना पड़ता है।"

मैंने पूछा, "आपकी मातृभाषा क्या है ?"

उन्होंने कहा, "कनाड़ी।"

मैंने पूछा, "आप यहाँ आने से पहले क्या काम करते थे?"

उन्होने कहा, "सब से पहले मैंने अपनी जीवन-यात्रा पुलिस के काम से प्रारम्भ की थी, पर पिता जी ने मुझे उधर से रोक दिया। मैं फिर इस ओर आया। सन् १६२६ से ही मैं और पृथ्वी-राज इस ओर एक साथ आये।"

मैंने पूछा, "कांग्रेस के कार्यों से आपको दिलचस्पी है?"

उन्होंने कहा, "हाँ, अपने सम्पूर्ण हृदय से—मैंने कांग्रेस के हास्पिटल फण्ड के लिये चन्दा तक इकट्ठा किया और हरकाम में मैं आगे बढ़ना चाहता हूँ।"

इसी वक्त चाय आई और हमारे प्रश्नोत्तरों में बाधा खड़ी हो गई। छोटा बच्चा भी आया और हमारा ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। और न जाने क्यों मेरे मुंह से निकला:—

"अच्छा बच्चा है।"

इसी वक्त देखा मि० नयम्पल्ली का चेहरा कुछ गम्भीर हो गया, कातरता के लक्षण स्पष्ट झलकने लगे और उन्होंने कहा—"जब से मैंने १॥ वर्ष के बच्चे को खोया है तब से मेरा जीवन ही पलट गया।"

और भी कुछ कहना चाहते थे कि वे एकाएक चुप हो गये, उनका चेहरा देख कर स्पष्ट झलकता था कि अपने स्वर्गस्थ बालक की प्रतिच्छवि उनकी आँखों में नाच रही है। सहानुभूति के लिये हमारे पास एक भी शब्द न था, क्योंकि जिस ममता ने उन पर

कब्जा किया था, वही ममता मेरे अपने जीवन में भी अभी तक कब्जा जमाए हुए है, मैं भी तो अपने उस नन्हें से शिशु की याद किसी की भी सहानुभूति से नहीं भुला पा रहा हूँ। हम दोनों ही जैसे ध्यान मग्न से हो उठे।

इसी वक्त उनकी पत्नी ने आकर हमारा ध्यान भङ्ग किया, और श्री नयम्पल्ली ने उसी भरे गले से हम लोगों का परिचय कराया। साथ ही अपनी वृद्धा माता जी से भी परिचय कराया।

श्री नयम्पल्ली अपने जीवन की उस तन्त्री को बार-बार टुनकारते जाते थे, जिसमें उन्हें विश्वास है कि उसमें कला है, कुछ कर सकने की शक्ति है, पर वह कलाकार उसे अपने मन-ही-मन में बजा कर रह जाता है, दूसरे के पास कहने नहीं जाता कि, मैं भी कुछ कर सकता हूँ।

उस सभ्य, शिक्षित और सच्चरित्र कलाकार नयम्पल्ली से मिलकर हमें जो हृदय-मिलन का अनुभव हुआ उसका वर्णन करना खास कर इन पँक्तियों में--हमारे लिए असम्भव है।

अँधेरा होने को आया था, बम्बई के अँधेरे से डर लगता था, इसलिये कल आने का वादा किया और चले आये।

वहाँ से सीधे हम लेमिंगटन रोड आये। हमें 'प्रभात' के वितरण आफ़िस 'फेमस पिक्चर्स' में जाना था। 'फेमस पिक्चर्स' का आफ़िस नीलम मञ्ज़िल में है। हम लोग ग़लती से नीलम-मेन्सन में पहुँच गये! जीने से ऊपर चढ़ते हुए हमें एक महाराष्ट्र युवती से

भेंट करनी पड़ी, जो शायद बाहर आ रही थीं, हमने उससे पूछा—"'फेमस पिक्चर्स' का आफिस कहाँ है ?"

बड़ी कोमलता के साथ उत्तर मिला—"वह तो यहाँ नहीं, नीलम मञ्जिल में है।"

हमने पूछा—"वह कहाँ है ?"

उत्तर दिया—"पास ही"—और हमारे नीचे उतरते-उतरते युवती भी नीचे उतरी, सड़क पर हमारे साथ नीलम मञ्जिल के सामने तक आई और उङ्गली से उसे दिखाते हुए कहा—

"यहीं फेमस पिक्चर्स का आफ़िस है तीन तले पर !

इतना ठीक ठीक पता देना एक गृहस्थ महिला के लिये तब सम्भव था, जब उक्त आफ़िस से उसका कुछ भी सम्बन्ध होता। किन्तु हमें आश्चर्य हुआ यह जानकर कि युवती का उस आफ़िस से कोई सम्बन्ध नहीं, केवल प्रभात की लोकप्रियता का यह एक उदाहरण था।

बम्बई के आम आदमियों के लिये हमारे मन में जो एक आदर की भावना-सी थी वह उक्त उदाहरण से पुष्ट हुई। वहाँ की पुलिस का सर्व साधारण से इतना अच्छा व्यवहार है कि हमें कई बार मुग्ध हो जाना पड़ा।

फेमस पिक्चर्स के आफ़िस में जाकर हमें जो खास बात मिली वह यह थी कि—५०-६० आदमी जो कर्मचारी थे सभी नवयुवक और सभी के काम करने का ढंग बड़ा ही शानदार। सभी की मेज एक जैसी सजी हुई सभी का व्यवहार बड़ा ही मीठा। एक अजीब-सा घरू वातावरण !

हमने वहाँ प्रभात के भागीदार और बम्बई आफिस के संचालक श्री बाबूराव पाई से भेंट की । उनसे हमारी फ़िल्म-व्यवसाय के सम्बन्ध में काफ़ी बात-चीत हुई ।

खद्दर की धोती और कमीज पहने श्री दामले भी उस समय उन्हीं के पास बैठे थे !

उनके कथन का सार यह था ।

"फ़िल्म-निर्माताओं तथा आलोचकों के मध्य उनके पारस्परिक व्यवहार में घनिष्ठता स्थापित करने के लिये यह समझना आवश्यक है कि सिनेमा आज एक प्रमुख व्यवसाय है तथा उसकी आलोचना करना एक पेशा । जब हम सिनेमा को केवल कला की दृष्टि से देखते हैं और आलोचना को एक निरर्थक एवं अरुचिपूर्ण वस्तु समझते हैं, तो इन दोनों के बीच संकटमय वातावरण पैदा हो जाता है और फलस्वरूप दोनों एक-दूसरे को अपने लिये भयंकर समझते हैं और दोनों एक दूसरे पर दोष देने लगते हैं ।

हमें यह देखकर अवश्य प्रसन्न होना चाहिये कि सिनेमा ने आज भारत में एक प्रमुख व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है । यदि यह केवल विशुद्ध कला के रूप में होता तो यह गिने-चुने धनिकों तक ही सीमित होता । आज सिनेमा को किसी एक या गिने-चुने लोगों का न होकर सर्वसाधारण के मनोरञ्जन का साधन होने की आवश्यकता है ।

एक सिने-आलोचक का जनता के मन में चित्र के प्रति रुचि उत्पन्न करना मुख्य कर्तव्य है । कला और टेकनीक पर चाहे कुछ

लिखें, कोई प्रभाव न होगा। चित्र की अक्षरशः व्याख्या करना तथा इस व्यवसाय के हित में नये-नये उपाय निर्माताओं के सामने रखना ही वास्तविक आलोचना है, जिसकी नितान्त आवश्यकता है।

सफल आलोचक वही है, जो आपके सामने चित्र का वास्तविक रूप रख दे तथा आप उसमें तन्मय हो जाय। 'उस चित्र में उसने क्या पसन्द किया और क्यों—यही बताना आलोचना है।'

फेमस पिक्चर्स की सीढ़ियाँ उतरते ही भाई शान्तिप्रसाद जी ने कहा—अभी तक तुम थके नहीं, अब चलो घर चलें।" भाई सीताराम जी ने भी उनकी हाँ में हाँ भरी, वाध्य होकर घर आना पड़ा।

ट्रेन में बैठे ही थे कि भाई नागर जी और श्री किशोर साहू के पिता जी मिल गये। दिवाली के पहले का दिन था। परिचय पहले हो चुका था, उन्होंने गाड़ी में बैठे-बैठे अपनी दो एक उर्दू कवितायें सुनाई और उनका भाव भी समझाया। कवितायें काफ़ी पसन्द आईं।

ट्रेन दादर स्टेशन पर लगी कि नागर जी उतर गये।

श्री साहू के पिता जी भी शान्ताक्रुज ही जारहे थे, वहीं उनका मकान था और उन्होंने कल का हमें निमन्त्रण दिया, कि वहीं पर भोजन भी हो, और किशोर तथा श्रीमती स्नेहप्रभा से मुलाक़ात भी करा दी जाय।

यद्यपि नागर जी के घर पर साहू साहिब से मुलाक़ात हो चुकी थी, पर दोनों नवविवाहित कलाकार दम्पत्ति को देखने का

लाभ हम न रोक सके और उनका निमन्त्रण स्वीकार किया गया।

घर पर हम लोग खाना खाने बैठे ही थे कि नैयागी जी के सामने के कमरे में कुछ ज़ोर-ज़ोर की बोल-चाल सुनाई दी, मैंने चौंक कर पूछा "क्या है ?"

भाई शान्तिप्रसाद जी ने कहा—"सास-बहू का झगड़ा है। बहू इतनी निष्ठुर कि वह अपनी सास को जब देखो तभी धमकाती रहती है।"

बोल-चाल गुजराती भाषा में हो रही थी इसलिये डायलाग्रों का समझना मुश्किल था।

मैंने पूछा—"तो उसका पति ?"

वे बोले "अरे वह तो गोबर-गणेश है, डरता है अपनी स्त्री से !"

"तो आप क्या चाहते थे वह अपनी स्त्री को गाली बकता ?"

"गाली क्या, उसे तो बेंतों से पीटना चाहिये था—बेंतों से !"

"भाई जी, आपके मुँह से यह बात शोभा नहीं देती !"

"क्यों ?"

"क्या वह बहू युवती है ?"

"हाँ, अभी छोकरी है !"

"एक बात याद रखिये, एक नौजवान लड़की अपने से बड़े का तभी अपमान कर सकती है जब उसे महान कष्ट हो—इस बहू को उस घर में महान कष्ट होगा तभी वह ऐसा करती है !" मैंने भाई साहब को समझाने की टोन में कहा।

भाई साहब हँसते हुए बोले—"जवानी में आदमी जो न करदे वही कम !"

"ठीक है, मगर अपना नुक्सान, दूसरे का नहीं, जवानी अन्धी है ज़रूर, पर अपने लिये, दूसरे के लिये नहीं।"

भाई साहब ने कहा—"खैर छोड़ो जी, हमें क्या उनके झगड़े से। अब आराम करो।"

दूसरे दिन प्रातः समय से पहले ही भाई साहब मुझे उठाने की फ़िक्र में पड़ गये—चलो, आज छुट्टी का दिन है, जुहू पर समुद्र-स्नान किया जाय, लो उठो, चाय पी लो।

भाई सीताराम जी उठकर चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे।

जुहू का नाम सुनते ही मुझे अपनी कलम की याद आगई। वह कलम अभी तक उन्हीं के घर में पड़ी थी जिन्होंने हमें जुहू बताया था।

मैंने उठते ही पूछा—"हाँ-हाँ हमें जाना है जुहू—कहाँ है वह स्थान ?"

"वह सामने देखो न समुद्र का खुला किनारा, आज वहाँ मेला लगेगा, ह ारों आदमी स्नान करने आयेंगे, सैर पर आयेंगे, पिकनिक पर आयेंगे।",

मैंने कहा—"भाई साहब, एक शर्त पर जा सकता हूँ।"

"क्या शर्त है ?"

"अगर होटल से भाई और भाभी साहिबा को ले आयें।"

"यहाँ से वहाँ जाने और आने में ११ बजेंगे, फ़ायदा ?"

"कुछ भी हो उन्हें लाना ही होगा।"

"टेलीफ़ोन न कर दें ?"

"हाँ, कहिए कि (मुझे) उसे बड़ी भारी तक़लीफ़,........ मगर नहीं कहिए कि यहाँ का सब से अच्छा रमणीक स्थान......" अच्छा मैं ही जाकर कहूँ।"

मैंने फ़ोन पर भाभी जी को जुहू आने को कह दिया। मेरे आह्वान को टालने की हिम्मत भाभी जी में न थी, एक घण्टे तक पहुँचने का वादा किया। मैंने वापस आकर कल रात के उस शोर-गुल वाले कमरे की ओर ताका। देखा दो युवतियाँ दाँतुन करने में व्यस्त हैं।

भाई साहब से पूछा—"यही हैं वे लड़ाकू, तो इनमें कौन सास और कौन बहू है।

भाई साहब ने कहा—साँवले रंग की है बहू और दूसरी है ननंद, सास तो बुढ़िया है।"

उस साँवले मुख पर दो काली-काली बड़ी आँखें वास्तव में आकर्षण की वस्तु थीं। उसके चेहरे की कोमलता से मैं भाई साहिब के कल रात के रूखे वाक्यों की किसी तरह तुलना नहीं कर सका। मैं भी बार-बार उस ओर देख रहा था, आँखें चार होते ही दोनों को झेंपना पड़ता था।

मगर इधर भाई साहिब का तकाज़ा शुरू हो गया था "—चलो, जल्दी निपट के आओ। फिर जुहू चलेंगे।"

"इतनी क्या जल्दी है ?"

"अरे एक घण्टे के अन्दर वे तुम्हारे होटल वाले जा वहाँ पहुँच कर तुम्हारी खोज करते फिरेंगे।"

"ओफ़! ......हाँ तो......" जाना ही पड़ा। शौचादि से निवृत्त होकर हम लोग जुहू की तरफ़ चल पड़े। कुछ ही दूर आगे जाकर देखा वही दो काली आँखें आगे-आगे अपनी ननद के साथ बढ़ रही हैं।

भाई साहब ने कहा—"देखो हमारे पड़ोसी भी वहीं जा रहे हैं।"

मैंने पूछा—"तो क्या ये लोग भी वहाँ स्नान करेंगे?"

वे बोले—"स्नान तो शायद नहीं करेंगे—मगर क्या स्त्रियाँ वहाँ स्नान नहीं करतीं?"............

मैंने कहा—"भाई साहिब! मालूम होता है आपके पास दिल नहीं है, नहीं तो उसे इतनी रूखी न कहते, देखते हैं उसकी चाल, उसकी आँखें, उसका भोलापन?"

"हाँ-हाँ देखा है, कविता की यह सब बातें हैं, प्रकृत जीवन में यह सब नहीं चलता। मैं आज उसे दो वर्ष से देख रहा हूँ, तुम दो दिन से आए हो, तुम क्या जानो?" बड़े कड़े होकर भाई साहब ने कहा।

मैंने कहा—"भाई साहिब! आप बहुत अच्छे आदमी हैं।" सुनकर भाई साहब को जबरन् मुस्कुराना पड़ा।

धीरे-धीरे हम लोग जुहू के संकेतपूर्ण स्थान पर जा लगे वहाँ की शोभा ही निराली थी। समुद्र की धीमी-धीमी लहरें

काफ़ी दूर तक आ आ कर लौट रही थीं, सुदूर क्षितिज तक समुद्र मिला हुआ दिखाई दे रहा था।

एक अङ्गरेज़ युवक और युवती किनारे से करीब दो जरीब के फ़ासले तक समुद्र में आकर कल्लोल कर रहे थे, अनन्य कई अङ्गरेज़ परिवार के परिवार ही इस स्नान में रत थे, कुछेक हिन्दुस्तानी आदमी भी स्नान में लगे थे।

इसी वक्त एक ओर से भाभी साहिबा के साथ भाई साहब के दर्शन हो गए।

मैंने पूछा—"कैसी जगह बुलाया भाभी जी ?"

जवाब मिला—"बड़ी प्यारी जगह है।"

मैंने कहा—"टैक्स लगेगा।"

वे बोलीं—"जो बोलिए।"

मैंने कहा—"बस हम लोगों के साथ समुद्र-स्नान"।

वे बोलीं—"बाप रे ! समुद्र-स्नान ?—यह तो मुझ से नहीं होगा। मुझे डर लगता है।"

मैंने कहा—"देखते हैं, वह दूर पर एक लड़की है, एक लड़का है, उन्हें नहीं लगता डर ?"

"नहीं लगता होगा, और फिर इस खुले मैदान में ? न भाई मुझ से नहीं होगा !"

हम लोग नहाने का ड्रेस में उतर पड़े समुद्र में। भय मुझे भी कुछ-कुछ लग रहा था—यह समुद्र-स्नान का मेरा पहला ही मौका था—फिर भी सङ्कोचवश मैं चुप था।

कुछ दूर आगे जाकर समुद्र की लहरों में मुझे भी आनन्द आने लगा। भाभी दूर पर बैठी हमारे कपड़ों की रखवाली में रहीं। मैंने दूर से देखा भाई साहब वाले पड़ोस की युवतियाँ भाभी जी से बातों में लगी हैं। इसी वक्त किसी ने मुझे नाम लेकर पुकारा, समुद्र में यह परिचित आवाज़ कैसी ?

देखा सिनेमा-जगत की प्रसिद्ध अभिनेत्री प्रतिमादास गुप्ता हैं।

"अरे आप ?"

"और आप यहाँ ?"

समुद्र के पानी में ही हम लोगों ने हाथ मिलाए।

यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्रीमती प्रतिमादास गुप्ता ने सर्व प्रथम मेरे चित्र "रुक्मणी" में ही काम करके इस क्षेत्र में प्रवेश किया है। दूरी पर जल-क्रीड़ा करते हुए मैं जिन दो को अङ्गरेज़ दम्पति समझ रहा था वह श्रीमती दास गुप्ता और उनके पति मि० हक थे।

मिसेस गुप्ता बोली—"मैंने कल सुना था कि आप हमारे स्टूडियो में आए थे; तो मिले क्यों नहीं ?"

मिलने के लिए तो गया था पर एक साहब घसीट कर ले गए, क्या करता ? अच्छा बताइए, 'राजनर्तकी' के हिन्दी, अङ्गरेज़ी दोनों संस्करणों में आपका काम है ?"

"हाँ दोनों में—आप बम्बई कब आए ?"

"तीन-चार दिन हुए।"

मैं बात समाप्त भी न कर पाया था कि एक ऐसा पानी का झोंका आया कि हम दोनों ही कुछ दूर तक बहते चले गए, किन्तु अन्त में दोनों ने एक दूसरे को सम्हाल लिया।

मैंने कहा—"आप लोग उतनी दूर कैसे गये?"

"तैर कर! क्यों, आप नहीं जा सकते।"

"नहीं, डर लगता है, किसी जानवर ने पकड़ लिया तो?"

"हाँ, यह बात तो है।"

इसी वक्त एक ओर से भाई शान्तिप्रसाद जी के साथ सभी स्नान करने वाले हमारी ओर आते दिखाई दिए, और दूसरी ओर दास गुप्ता के पतिदेव मि० हक आते दिखाई दिए। मिसेस दास गुप्ता ने छुट्टी ली और तैरती हुई मि० हक से जा मिलीं, और उधर सम्भवतः उन्होंने मेरा परिचय दिया और इधर सभी ने आकर मुझे पूछा—"कन था?"

मैंने भी उनका परिचय दिया।

अब स्नान में रुचि नहीं रह गई थी। हम लोग सभी किनारे आकर कपड़े बदलने लगे। भाभी जी ने पूछा—"कौन थी वह, जिससे समुद्र में बातें हो रही थीं।"

मैंने वहाँ भी परिचय दिया, और भाभी जी को ताना दिया कि "इस वक्त अगर आप भी हमारे साथ स्नान करती होतीं तो एक अभिनेत्री से परिचय तो हो जाता?"

"मुझे न चाहिए किसी का परिचय!" कहकर उन्होंने भाई साहिब का पतलून उन्हें दिया और मेरी खद्दर की भारी धोती मुझे थमाई।

मैंने पूछा—"और आप किससे बातों में मशगूल थीं भाभी जी ?"

उन्होंने कहा—"नैथाणी जी वाले मकान में ही रहते हैं वे लोग—बड़े अच्छे लोग दीखते हैं।"

अपनी बात की पुष्टि होती देख मैंने भाई नैथाणी जी की ओर मुस्कराते हुए देखा, वे बोले—"अच्छे आदमी तो हैं ही, मैं यह थोड़े ही कहता हूँ कि वे बुरे हैं।"

"यह चोर की डाढ़ी में तिनका क्यों ?" मैंने पूछा।

वे बोले—"मैं तो कहता हूँ उसकी अपनी सास से नहीं बनती।"

"मगर भाई साहिब ! ज़रूर उसे कोई कष्ट है, इसीलिए वह इतनी कोमल होती हुई भी अपनी सास के लिए इतनी कठोर है।"

"क्या जाने होगा कोई कष्ट।"

और तब हम लोग कुछ देर और इधर-उधर घूम-फिर कर वहाँ से दो कारों में भर कर शान्ताक्रुज नैथाणी जी के निवास-स्थान पर पहुँचे।

वहाँ देखा जैसे वही काली आँखें हमारे इन्तज़ार में हों। उनकी तरफ़ मैं कुछ ज़्यादा आकृष्ट होता दिखाई दिया। उस साधारण से सौन्दर्यविहीन चेहरे में क्या आकर्षण था, यह मैं खुद भी समझ नहीं पा रहा था।

उस दोपहर का खाना वहीं पर हुआ। हज़ारों और लाखों किस्म की बातें हुईं, और लगता था जैसे हम लोगों की बातों का सिलसिला कभी समाप्त ही नहीं होगा।

दादर जाने वाली गाड़ी आई और बहुत से लोगों के साथ हम लोग भी उसमें घुस पड़े। संयोगवश दोनों एक सीट पर बैठ गये। युवती के हाथ में कापी थी, और मेरे हाथ में कैमरा था। युवती के चेहरे पर मुस्कराहट थी और मेरे मुख पर चिन्ता की छाया।

मगर मेरा मन कुछ विक्षिप्त-सा हो चुका था। बातों पर दिल जमता ही नहीं था, कुछ सोचने को जी चाहता था। यकायक भाभी जी ने विदा माँगी और वे चल पड़े वी० टी० की तरफ़।

भाई नैथाणी जी सोने का उपक्रम करने लगे। सीताराम जी सो चुके थे। मैंने कहा—"मैं ज़रा घूम के आजाऊँ भाई साहिब !"

और उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

मैं शान्ताक्रुज स्टेशन पर गया ही था कि वही पड़ौसवाली काली दो आँखों वाली वहाँ पर खड़ी गाड़ी का इन्तज़ार करती मिलीं। मुझे कुछ सन्देह होने लगा, कहीं ये ऐसा न समझें कि मैं उनके पीछे पड़ गया हूँ। मगर इस सन्देह का कोई पूरा कारण नहीं था।

गाड़ी का चलना ही था कि उसने ही पूछा—"कहाँ तक जाना है आपको ?"

सिटपिटा कर उत्तर दिया—"दादर तक।"

"आप तो कल ही आये हैं न यहाँ, कहीं बाहर से आये हैं ?"

"जी हाँ कलकत्ते से आया हूँ।"

"यहीं हमेशा ही रहेंगे ?"

"जी नहीं, २—४ दिन तक।"

"फिर कलकत्ते जायेंगे। कोई बिजनेस में आए होंगे ?"

"जी हाँ।"

मुझे प्रतीत हुआ, मेरे उत्तर से वह प्रसन्न नहीं हो सकी हैं, और किसी महिला से बातें करते हुए उसे नाराज़ कर देना सभ्यता का तकाज़ा तो कतई न था। इसी ख्याल से मैंने उनके हाथ से कापी ले ली और पूछा—क्या मैं देख सकता हूँ ?"

"क्यों नहीं, ज़रूर।"

मैंने देखा कापी में किस्म-किस्म के ड्राइङ्ग बने हैं, सम्भवतः जो कपड़ों में काढ़ने के काम आ सकते हैं!"

मैं कापी देख ही रहा था कि वह बोली—"दादर तो आगया।"

"ओह, लीजिये।" कह कर मैंने कापी उनके हाथ में दी और उठा।

वे बोली—"मै भी तो यहीं उतरूँगी।"

और वे आगे और मैं पीछे-पीछे उतर कर स्टेशन के बाहर आ गये।

मैंने कहा—"आप किधर जायेंगी ?"

"और आप ?" उत्तर मिला।

"मैं... मैं तो यों ही एक सूटकेस लेने चला था, इधर तो मिल जायेगा न ?"

"हाँ-हाँ यहीं पास में एक अच्छी दूकान है—सूटकेस चमड़े का न ?"

"हाँ चमड़े का।"

"तो चलिए, ले लें।"

और हम दोनों ने पास की एक दुकान में जाकर चमड़े का एक अच्छे दामों का सूट केस ख़रीद लिया और दुकान से बाहर आकर मैंने कहा—

"अब आप बताइये, आप कहाँ जायेंगी?"

"मैं जा रही थी—अपनी मास्टरानी के घर पर, मगर अब नहीं जाती।"

"क्यों अब क्या हो गया? देर हो गई?"

"हाँ काफ़ी देर होगई।"

"ओ हो! मेरे सूटकेस ने ही देरी करा दी।"

"नहीं, अपनी इच्छा से मैंने देरी की थी, ख़ैर, छोड़िये। चलिये, इसी सड़क से कुछ दूर पैदल जाकर हम लोग दूसरे स्टेशन से गाड़ी पकड़ लेंगे।"

"चलिए।" हम दोनों रेल के किनारे वाली सड़क से चल पड़े। कुछ दूर तक तो हम दोनों चुप ही रहे। मगर इस तरह चुप्पी में समय काट देना अच्छा न था। मैंने पूछा—"एक बात पूछ सकता हूँ?"

"क्या बात?"

"कल आप के घर में क्या झगड़ा हो रहा था, क्या आपके साथ कोई बात हो रही थी?"

"कुछ नहीं, यों ही।"

"देखिये, यदि कोई खास बात न हो तो कृपया बताइये न ? आप को नहीं मालूम, मैं कल रात से अभी तक इसी चक्कर में हूँ।"

"क्यों ?"

"यों ही—आप बताइये न ?"

"मैं ज़रूर बता दूँगी—विश्वास रखिये। मगर आप बताइये—क्यों आप चक्कर में हैं ?"

"मेरे मन पर चोट पहुँची है, आपको देखने के बाद...... खैर, आप बताइये न, क्या बात थी ?"

"नहीं-नहीं बोलिए, क्या मुझे देखने के बाद......क्या ?"

"यही कि ऐसा लगता है शुद्ध, शान्त, भोली भाली—लड़ाई-झगड़े से भला आपका क्या मतलब ?"

"ऐसा आपको विश्वास होता है ?"

"ज़रूर।"

"आप सचमुच बहुत अच्छे हैं !" वह गद्‌गद् होगई।

मैंने उसकी मुखाकृति को ग़ौर से निहारा, दृष्टि में तेज था, आकर्षण था, और थी वह सजीवता जिसके बिना स्त्री का जीवन ही व्यर्थ हो जाता है।

"क्यों ?" मैंने पूछा और उसकी ओर देखा

"यों ही दिल को दिल पहचान जाता है।" वह ऊँची नज़र करके चलते चलते ही मुझे देखने लगी।

"धन्यवाद !" मैंने उत्तर दिया—मगर बताइये तो क्या बात थी कल ?

"कल ही क्या था, यह तो रोज़ का झगड़ा है, मगर आप सुनकर नाराज़ तो नहीं हो जायँगे ?" वह बोली।

"नाराज़,—नराज़ भला मैं क्यों होने लगा ?" मैंने कहा।

वह बोली—"मेरा मतलब है, घृणा तो नहीं करेंगे ?"

"नहीं, कभी नहीं, आप बताइये—बिना सङ्कोच !"

"बताना क्या है सारा झगड़ा है एक बात पर। उनकी आदत है दारू पीने की, जो कुछ कमाते हैं सभी दारू में चौपट होजाता है। पहले पहल तो मुझसे छिपा कर पिया, फिर मेरे सामने पीने लगे और अब एक साल से तो मुझे भी पिलाया जाता है। मैं दारू से घृणा करती हूँ। मैं नहीं चाहती कि उसकी मुझे गन्ध भी आये, मगर वे मानते नहीं और जब मैं पीना नहीं चाहती तो तब जो मेरे साथ अत्याचार होता है वह कहने लायक नहीं। पहले-पहल तो मैं भी डर से चुपचाप पीती रही पर जब असह्य हो गया तो मैंने अपनी सास से कहा, किन्तु उन्होंने उस काम से रक्षा करने के बजाय उल्टे मुझे उपदेश देना आरम्भ किया कि मैं अपने स्वामी को खुश रखने के लिए उनके कहे मुताबिक सब कुछ करूँ। अब—अब तो मामला यहाँ तक पहुँच चुका है कि सास भी और वे भी दोनों मिलकर डाँट फटकार कर जब तक मुझे दारू नहीं पिला लेते, सोते नहीं। कभी कभी दिन में भी ऐसा चलता है। यही सिलसिला दिनों से चल रहा है। दारू के लिए मैंने न कहा तो बस झगड़ा शुरू हुआ। दोनों के दोनों इतनी सफेद झूठ बोलकर मुझे दोषी बनाते हैं कि मुझे उस पर आश्चर्य होता है।"

मैंने कहा—"बात तो बहुत बुरी है, कभी कभी मनुष्य को ऐसी परिस्थिति में पड़ जाना पड़ता है कि वह न तो सह सकता है और न ही कर सकता है, ख़ास कर हमारी हिन्दू नारियाँ तो इस परिस्थिति की शिकार ही समझनी चाहियें। मगर आपको विश्वास रखना चाहिये एक न एक दिन आपके हाथ में एक बात आयेगी कि उनकी नकेल आप जिधर घुमायेंगी, वे लोग उधर ही घूमेंगे। क्योंकि आप सच्चे मार्ग पर हैं।"

"क्या आयेगा ऐसा दिन ?"

"अवश्य ! ईश्वर आपका साथ देगा।"

"आपके मन में मेरे प्रति घृणा तो नहीं हुई ?"

"आपके प्रति मेरे हृदय में सम्मान बढ़ा है। मैं आपकी परिस्थिति अच्छी तरह समझ रहा हूँ। किन्तु मुझे दुख हो रहा है कि मैं कार्यरूप में आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता, किन्तु ईश्वर से प्रार्थना करता रहूँगा जिससे वे लोग अपनी निर्दय हठधर्मी से मुक्त हो सकें।"

वह और भी कुछ कहना चाहती थी, किन्तु मैंने रोक दिया। पूछा—"आपका नाम ?"

"मुझे कुन्तल कहते हैं।" उसके मुख पर पसीना छलछला आया था और क्रोध और क्षोभ के कारण उसका अन्तर मानो जल-सा रहा था।

इसी प्रकार बातों के लगाव में हम लोग शान्ताकुंज के नज़दीक पहुँच गये, वे बोलीं—"आप कब जा रहे हैं ?"

मैंने कहा—"५-४ रोज़ ही में"

"मैं एक बात कहना चाहती हूँ। कहूँ ?"

"कहिये।"

"आपसे अनायास परिचय होकर, आपसे बातें करके—आपको देखकर ही एक प्रकार की तृप्ति-सी अनुभव कर रही हूँ—क्या मैं आप से एक चीज़ माँग सकती हूँ ?—चीज़ क्या आप अपना एक फ़ोटो दे दीजिये। देंगे ?"

वह सभी कुछ एक साँस में कह गई। रुकी ज़रा भी नहीं। बल्कि आँखों में तेज़ कुछ ज़्यादा चमकने लगा।

मैंने फ़ोटो के लिये हामी भरदी। मगर कैसे पहुँचाऊँ यह प्रश्न मैंने पूछा—

वह बोली—"मैं आपके पास किसी को भेज दूँगी। आप उसी के हाथ अपना फ़ोटो भेजियेगा। अच्छा आप इधर से जाइये, मैं उधर से जाती हूँ।" और वह एक ही घर पर जाने के लिये दूसरे रास्ते से चल पड़ी।

घर पर जाते ही साढ़े सात बजे का समय हो गया था। भाई साहब मेरे इन्तज़ार में थे कि आठ बजे रात को किशोर साहू के घर पर जाना था।

स्नान करने का भी समय नहीं मिला। किसी तरह मुँह-हाथ धोकर कपड़े बदल कर वहाँ के लिये प्रस्तुत हो सका।

ठीक आठ बज रहे थे जब मैं भाई नैथाणी जी के साथ किशोरसाहू के मकान पर पहुँचा। यह दीवाली का दिन था जो कि

बम्बई के प्रत्येक घर में बड़े ही समारोह के साथ मनाया जाता है। चौक पूरे जाते हैं। मकान सजाये जाते हैं, आनन्द मनाया जाता है। मगर ब्लैक आऊट ने सारा मज़ा किरकिरा कर दिया था।

"भैया अभी आते हैं, आप लोग बैठिये।" एक युवती ने हमें सूचना दी और हम एक सजे-सजाये कमरे में बिठाये गये। हम सोच रहे थे कि किशोर साहू के पिता श्री—जिन्होंने हमें निमन्त्रण दिया था—हमारी प्रतीक्षा में होंगे, मगर मालूम हुआ कि वे अभी तक बाहर से लौटे ही नहीं हैं।

ढीले पैजामे पर रेशमी पँजाबी कमीज़ पहने मि० साहू रूमाल से कानों के भीतर का पानी पोंछते हुए वहाँ पर पधारे—देखने से मालूम हो गया कि वे अभी बाथरूम से निकल रहे हैं। हमने समझा अभी अभी शायद स्टुडियो से लौटे हैं और हम लोगों के आने की ख़बर बाथरूम में ही मिली है, हो सकता है निमन्त्रित होने पर भी हमारा आना कुछ अखर सकता है—मगर देखने और नमस्कारादि के आदान-प्रदान से हमारा सन्देह जाता ही रहा।

बातों का सिलसिला शुरू ही हुआ था कि श्री साहू की सद्यविवाहिता पत्नी श्रीमती स्नेहप्रभा प्रधान भी वहीं पर आकर बैठ गईं। मुखपर का मेकअप अभी शायद निकाल न पाई थीं मगर केशराशि बिखरी हुई आकर्षक लगती थी। उनके आते ही मिठाई की थालियाँ भी आने लगीं और हम लोग एक-एक करके थालियाँ साफ़ करने लगे!

हमने पूछा—"क्या फ़िल्मों की आलोचनायें इस व्यवसाय को कुछ तरक्की दे सकती हैं?"

उन्होंने कहा—"क्यों नहीं ? सभी आलोचनाओं का हमेशा अच्छा असर होता है।"

"किन्तु ऐसा भी तो हो सकता है कि जो व्यक्ति सच्ची लगन से इस ओर अग्रसर हो रहा हो और हम उसकी त्रुटियों को सच्ची आलोचना करें तो उसकी आशा या उसका भविष्य ही नष्ट हो जाय—कम से कम धन के कारण से तो ऐसा हो सकता है ?"

"हाँ, तो ऐसे व्यक्तियों को बढ़ा देना पत्रकारों का कर्तव्य होना चाहिये !"

"क्या आप किसी अन्य हीरोइन के साथ, जो कि आपके साथ काम करना चाहे, काम करेंगे ?"

"परिस्थिति को देखकर कहा जा सकता है। जहाँ तक संभव होगा हम दोनों चाहेंगे कि एक साथ काम करें।

"क्या आपके जीवन में कोई घटना हुई है जो आपको हमेशा याद रहे ?"

"जब मैं फ़िल्म-लाइन में आने के लिये घर से आ रहा था तो मेरे मित्रों ने मेरी खिल्ली उड़ाई थी और कहा था कि ये चले साहब, हीरो बनने !—पर मैं जब आया तो आप जानते ही हैं। मैं इसे कभी भी नहीं भूल सकता—वैसे तो कई घटनायें हैं।"

"और कोई ?"

"हाँ, जैसे मेरी शादी की घटना। आपको मालूम होना चाहिये कि मुझे अपने जीवन में अच्छी ही घटनाओं का सामना हुआ—दुर्घटनाओं का नहीं !"

"क्या आपकी शादी के पीछे कोई इतिहास है ?"

"इतिहास और क्या होगा, हम दोनों ने एक दूसरे को देखा, पसन्द किया, प्रेम हो गया और शादी हो गई !"

"क्या आपको इस बात से कुछ भी क्षोभ है कि आप प्रोड्यूसर और डाइरेक्टर के बाद आर्टिस्ट बने हैं ?"

"ज़रा भी नहीं, मैं आर्टिस्ट पहले हूँ डाइरेक्टर या प्रोड्यूसर पीछे। मैं आर्टिस्ट से नीचे जाना नहीं चाहता, बस यही।"

"क्या आपको इसके लिये भी क्षोभ है कि आपकी पत्नी को आप से ज़्यादा वेतन मिलता है ?"

"यह तो मेरी नादानी होगी, अगर मैं यह सोचूँ। क्योंकि मेरी कीमत तो मुझे मिल ही रही है। अगर स्नेहप्रभा मेरी पत्नी न होती तो फिर भी तो मुझे यही वेतन मिलता।"

इस प्रकार हम एक आदर्श कलाकार से मिलकर बड़ी मधुर स्मृति के साथ लौटे। इसमें सन्देह नहीं कि श्री किशोर साहू का व्यक्तित्व महान है और उनका फ़िल्म-विषयक अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है। हम इस महान कलाकार की दिनों दिन उन्नति चाहते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल में एक सुन्दर स्वप्न की स्मृति लिए हुए जाग रहा था कि देखा भाभी जी उस पञ्जाबी लड़की के साथ वहीं पर पधारी हैं, और इतनी ही देरी में मित्र महोदय बाथरूम में स्नान करने उतर पड़े हैं।

"अभी क्यों उठते हैं, थोड़ी देर और लेट लगाइये न, जो आयेगा अपने ही लौट कर चला जाएगा।" भाभी जी ने व्यंग

किया। आँखें बड़ी बड़ी करके मैंने उनकी तरफ़ देखा। उधर भाई नैथाणी जी चाय के लिये नौकर को समझा रहे थे और बार-बार कहते जाते थे—"समझ गया रे तू? समझ गया रे तू?"

"नमस्ते, भाभी जी!" मैंने कहा।

मुस्कराकर भाभी जी ने हाथ जोड़े।

"नमस्ते जी!" एक और नमस्ते आया। यह उस पञ्जाबी युवती की ओर से था।

"नमस्ते।" कह कर मैं आश्चर्य से उस ओर देखने लगा।

नैथाणी जी ने कहा—"कब से आये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और तुम अभी तक... .."

"आज मैं जूहू नहीं जाता।" मैंने बात काट कर कहा।

"तो हम ही कब जा रहे हैं।" भाभी जी ने उत्तर दिया।

पञ्जाबी युवती गुम-सुम एक कुर्सी पर जमी रही।

भाभी जी ने कहा—"आज आपको हमारे साथ सारे दिन रहना पड़ेगा, हम एक मिनट के लिये भी नहीं छोड़ेंगे—बस इसी लिए सुबह-सुबह हमने धरना दिया है।"

"भाई साहब कहाँ हैं?"

"स्नान करने गये हैं।"

"आज तो भाभी जी मैं इतना व्यस्त हूँ कि बस पूछिये मत। सब से बड़ा काम, आज मुझे पूना जाना है।"

"तो हम भी चलेंगे।" भाभी जी ने कहा।

"चलिए, मगर क्या करेंगे वहाँ जाकर?"

"जो आप करेंगे—सैर करेंगे, देखेंगे एक नया शहर।"

"तो तय रहा—आज सन्ध्या को?"

"हाँ तय रहा—आज सन्ध्या को।"

मित्र महोदय, आते-आते बोल उठे—"क्या है, क्या तय रहा आज सन्ध्या को?"

भाभी ने उत्तर दिया—"हें जी, आज हम लोग भी पूना हो आयें—हमारे साहब जा रहे हैं।"

"चड्ढा जी चलेंगे हम लोग भी।" भाई साहब ने कहा। "कितने बजे गाड़ी जाती है?"

"सन्ध्या को सात बजे।"

भाई सीताराम जी अपने घर जाने का इन्तज़ाम कर रहे थे। 'बहुत काम नुकसान हो जायेगा' कह कर वे उसी समय कुछ सामान ख़रीदने के लिये बाज़ार चल पड़े।

चाय पीते-पीते भाभी जी ने कहा—"इस लड़की का क्या किया आपने?"

"क्या करता?"

"अच्छा देखिये, पूना में ही कुछ हो जाय, मुझे तो इस पर दया आ रही है।" भाभी जी ने कहा।

"पूना में? इन्हें भी ले जायेंगे वहाँ?" मैंने पूछा।

"क्या हर्ज़ है ले जाने में?"

मित्र महोदय के बैठते ही भाई नैथाणी जी की चाय आगई। चाय के दौरान में कई किस्म की बातें हुईं, हँसी-मज़ाक के बीच

अच्छा समा बँधा और इसी समय एक बच्चा चुपचाप आकर दरवाज़े के बाहर खड़ा हो गया। मैंने उसे कई बार देखा मगर मैं समझ नहीं सका कि वह वहाँ पर चुपचाप क्यों खड़ा है ?

चाय समाप्त करके मैं बाहर गया ही था कि उसने पीछे से मेरे हाथ में एक लिफ़ाफ़ा—जिसके बाहर कुछ भी नहीं लिखा था दे दिया। लिफ़ाफ़ा हाथ में आते ही मुझे होश आया— हो न हो इसमें रहस्य अवश्य है। हो सकता है इसमें कुन्तल का पत्र हो, और कुन्तल की याद आते ही मैंने उसके घर की तरफ़ नज़र उठाई— वह अपने घर के दरवाज़े पर खड़ी इधर ही देख रही थी—आँखें चार होते ही वह भीतर चली गई।

मैंने लिफ़ाफ़ा खोला देखा उसमें कुन्तल का फ़ोटो है, उसके पीछे गुजराती अक्षरों में लिखा था—जिसका मतलब था—"अगर आप उचित समझें तो यह मेरा फ़ोटो अपनी नोटबुक में रख लें, जब इसे देखें तब याद कर लें और इसी लिफ़ाफ़े में अपना फ़ोटो भेज दें। पत्र पढ़ कर मैं चिन्ताओं के समुद्र में डूबने-उतराने लगा, मेरी समझ में न आया कि क्या करूँ, ख़ैर परिस्थिति और समय का ख्याल कर मैंने बच्चे से ठहरने को कहा। चुपचाप भीतर जाकर मैंने भाई साहब के एलबम में लगा अपना फ़ोटो जिसे मैंने दो दिन पहले ही दिया था—निकालकर सब की आँखों से बचाकर उन्हीं के लिखे अनुसार बच्चे की कमीज़ के भीतर रख दिया। बच्चा चुपचाप चला गया।

भाभी जी ने भीतर से ही कहा—"क्यों साहब, कहिये तो हम लोग चले जायें ?"

मैं भीतर गया, यकायक मेरी मुख-मुद्रा गम्भीर देख भाभी जी ने कहा—

"क्यों क्या होगया ?"

कुछ नहीं कह कर मैं चुपचाप बैठ गया। किन्तु अधिक देर चुप रहने से अधिक सन्देह की सम्भावना थी इस लिए मैंने ही पहले पूछा—"तो आज का क्या प्रोग्राम है ?"

"अब यह तो आपकी इच्छा पर है !" भाभी जी ने कहा।

"यह लड़की गाना जानती है ?" मैंने भाभी जी से उस पंजाबी युवती के विषय में पूछा—

"सुन लो—क्यों सुनायेंगी ?"

"सुना दूँगी।" वह बोली—

"बाजा है तो मँगा लो, अच्छा गाना जानती है।" भाभी बोली। कुन्तल के घर से ही बाजा मँगाया गया। युवती ने गाना आरम्भ किया और भाभी जी ने हारमोनियम बजाया।

गाना पंजाबी में गाया गया, जिसका अर्थ था:—

वर्षों की खोज के बाद तुम्हें पाया था,
मगर तुम कहते हो कि जाता हूँ,
यह नहीं होने दूँगी।

ज़रा ठहरो भी। आरती तो जला लेने दो।
फूलों का हार तो गूँथ लेने दो,
तुम्हारी पूजा तो कर लू, तुम्हारे
चरण तो छू लूँ।

मन्दिर में बैठे देवता की
लोग पूजा करते हैं और शान्ति
प्राप्त करते हैं। मैंने तुम्हें अपने
मन-मन्दिर में बिठाया है, फिर
तुम यहाँ से जाकर मुझे क्यों
अशान्त बना रहे हो ?

जिस सुर और गले से युवती ने यह गाना गाया, हम सभी वास्तव में उससे इतने प्रभावित हुए कि तारीफ़ों के सारे के सारे अल्फ़ाज़ उस पर निछावर करने को तैयार हो गये। मैं सोचने लगा इतनी अच्छी गायिका मेरी कृपा-पात्र बनी हुई है, कितना भाग्यशाली हूँ मैं।

मैंने कहा, "भाभी। मैं इस लड़की को ज़रूर कहीं काम दिलाऊँगा। इसमें तो सभी गुण हैं।"

युवती तृप्ति के साथ मुझे देखने लगी।

इसी वक्त कुन्तल के घर में कुछ शोर-सा सुनाई दिया। सब लोग बरामदे में आकर उधर देखने लगे। सास गुस्से से कुछ कहती थी और कुन्तल एक तरफ़ खड़ी रोती थी उसका पति चार-पाई पर नशे में चूर पड़ा था। मुझे समझने में देरी नहीं लगी। कमरे से बाहर आते वक्त पंजाबी युवती मेरे पीछे थी–चुपके से मुझे बोली "पूना मुझे ज़रूर ले जाइयेगा।"

कुन्तल की असहाय परिस्थिति पर क्रोध आते हुए भी मैं पंजाबी युवती की बात पर सोचने लगा।

भाई साहब ने कहा—"उनका यह रोज़ का धन्धा है।"

मैं वास्तव में बात कहते-कहते भी रुक गया।

भाभी जी से मैंने कहा—"मैं ज़रा स्नानादि से फ़ारिग हो लेता हूँ तो फिर चलेंगे।"

शान्ताक्रूज़ स्टेशन पर हम सब का दल गया था कि देखा भाई जवाहरलाल जी चतुर्वेदी हमारे मकान की ओर आने के लिए स्टेशन से निकल रहे हैं। नमस्ते आदि के बाद उन्होंने बताया कि वह कलकत्ते से कल ही सन्ध्या को यहाँ पहुँचे हैं और भाभी जी वाले ही होटल में ठहरे हैं। कलकत्ते में वे 'प्रभात सिनेमा' को लीज़ पर लेकर उसका मुहूर्त कराने के लिए "सिकन्दर" लेने आये हैं, और इसी सिलसिले में मुझे लेकर मि० मोदी से मिलना चाहते हैं।

मैंने उन्हें बताया कि मि० मोदी आज सन्ध्या को ही पूना जा रहे हैं और मैं भी जा रहा हूँ, लिहाज़ा भाई चतुर्वेदी जी को भी पूना जाने के लिये तैयार होना पड़ा।

जवाहर भाई का यकायक पहुँच जाना मेरी यात्रा में चौगुनी खुशी का बायस था, हम लोग दिन भर में भाई पृथ्वीराज, जहूर-राजा, मधुबोस, साधना बोस, मास्टर जयन्त आदि से मिलकर सन्ध्या को ७ बजे विक्टोरिया टर्मिनस पर पहुँच गये। सेकिण्ड क्लास के जिस डिब्बे में हम लोगों का दल बैठा, देखा कि उसी के एक कोने पर डाइरेक्टर सोहराब मोदी भी बैठे हैं। वह डिब्बा काफ़ी लम्बा था, करीब ५० आदमी उसी डिब्बे में यात्रा कर रहे हैं। यह गाड़ी बम्बई से पूना तक बिजली के सम्बन्ध से जाती है।

रात का अन्धेरा होने पर भी हम लोग प्रकृति के उस उपवन का आनन्द लेते हुए जा रहे थे,—जहाँ से हमारी ट्रेन गुज़र रही थी। वह बेतहाशा दौड़ रही थी। भाई जवाहरलाल चतुर्वेदी का ट्रेन में अच्छी तरह परिचय कराया गया। और थोड़ी ही देर में मैंने देखा हमारी मण्डली में उन्हीं ने नायक का स्थान ग्रहण कर लिया है।

रात के नौ बज रहे थे कि हम लोग पूना स्टेशन पर पहुँचे। प्लेटफ़ार्म से उतरते ही डाइरेक्टर मोदी से कुछ क्षण बातें हुई, दूसरे दिन ११ बजे का समय देकर वे अपने निवास-स्थान की ओर चले और हम लोग पास के ही एक होटल में अड्डा जमा बैठे। होटल के मालिक मथुरा का कोई चौबे था जो पुराने ख़यालों का कोड़ा था, पर हम लोगों के लिए उसने हर सम्भव सुविधा का ख़याल रखा।

मुश्किल हमें उस वक्त मालूम हुई जब हमें उस समस्या का सामाधान करना पड़ा जब कि दो कमरे लिये जाँय या तीन। क्योंकि भाभी जी और मित्र महोदय, मैं और चतुर्वेदी साहब और तीसरी वह पंजाबी लड़की, उसके लिए तो तीसरे कमरे का होना ज़रूरी था। भाभी जी की बड़ी तीखी नज़र मुझ पर उस वक्त पड़ी जब मैंने कहा दो कमरों से ही काम चलेगा।

फ़ौरन भाभी जी ने प्रतिवाद किया—"दिमाग़ तो ख़राब नहीं हो गया ?"

मित्र महोदय बोले—"नहीं तीन ही कमरे रहेंगे।"

मेरी परिस्थिति नाज़ुक हो गई थी कि भाई चतुर्वेदी जी ने बात सम्भाली, बोले—"इनका मतलब था एक कमरे में स्त्रियाँ और

दूसरे में हम तीनों मर्द—इस तरह काम चलेगा।"

मैंने फ़ौरन आगे बढ़कर कहा—"यही मेरा मतलब था, आप तो भाभी जी बस, दूसरों को योंही दोषी बना देती हैं।" और मैंने कुछ मुँह भारी करके कहा—"दो भी नहीं एक ही कमरे से काम चलेगा, ज़रा बड़ा कमरा दे दो।" और मैंने देखा मेरे मुँह भारी करने का अच्छा असर पड़ा—अन्त में एक ही कमरे में सामान रखा गया।

भाई चतुर्वेदी जी ने कहा—"ज़िंदगी अनुभवों का भण्डार है, आज यह नया अनुभव तो होगा?"

एक-एक करके सभी लोग स्नानादि से निवृत्त हुए और भोजनादि के बाद गप्पों का ताँता शुरू हुआ। रात के ११ बजे का समय हो चुका था।

भाभी जी ने पूछा—"एक बात मेरी समझ में नहीं आई। कलकत्ते के लोग फ़िल्मों को तैयार करने में इतनी धीमी चाल से क्यों काम लेते हैं, बम्बई के ही प्रोड्यूसर अच्छे जो जल्दी-जल्दी नई फ़िल्मों को तैयार करते जाते हैं।"

भाई चतुर्वेदी जी ने कहा—"कलकत्ता के डाइरेक्टर कलापूर्ण चित्रों को देते हैं और उसमें समझ से काम लेते हैं।"

मुझे हँसी आ गई।

उन्होंने पूछा—"क्यों हँसते हो?"

मैंने कहा—

कुछ दिन पहले 'शापमुक्ति' की नायिका और बम्बई के अनेकानेक चित्रों में काम करके आई हुई श्रीमती पद्मादेवी से किसी

पत्रकार ने पूछा था कि बम्बई और कलकत्ते के स्टूडियो-जीवन में क्या अन्तर है? तो अन्यान्य बहुत-सी बातों के साथ पद्मादेवी ने कहा था कि वहाँ के स्टूडियो में जहाँ कस के काम लिया जाता है, यहाँ ठीक उसके विपरीत है—अर्थात् यहाँ के कलाकार कुछ ऐसी ढिलाई से काम करते या लेते हैं कि उसे देखकर वास्तव में क्षुब्ध हो जाना पड़ता है।

बम्बई के चित्रों के प्रस्तुत होने में अधिक से अधिक तीन महीने का समय लगता है, और कलकत्ते में उससे दूना या तिगुना। और जब कभी एक चित्र पूर्ण हो जाता है, तो कलाकारों या डायरेक्टरों को दूसरा चित्र हाथ में लेते न लेते कम से कम ६ महीने का समय चाहिये। यह सोचने का विषय है कि यह क्यों होता है, और इस ढिलाई के द्वारा क्या-क्या नुकसान होते हैं?

यह तो मानना ही पड़ेगा कि बम्बई के मुक़ाबले में कलकत्ते के कलाकार अपनी कृतियों में अधिक कला का पुट देते हैं और अधिकाधिक कला-निपुणता का परिचय। किन्तु कला-निपुणता का परिचय देने के लिये अधिक समय की अपेक्षा होती है, यह कोई मानने योग्य तर्क नहीं।

उदाहरण के तौर पर हम डायरेक्टर बरुआ की कृतियों को सामने रख सकते हैं, डायरेक्टर बरुआ अधिक से अधिक ३ महीने में अपना चित्र शेष कर देते हैं, वे चित्र के शूटिंग के साथ ही साथ सम्पादन भी करते जाते हैं। उनके चित्रों में जो काम कर चुके हैं, उन्हें मालूम तो हो ही जाता है कि डायरेक्टर बरुआ के साथ काम

करना कितनी शीघ्रता का सामना करना है!—"जितना ठण्डा पकेगा उतना ही मीठा होगा" यह कहावत सभी जगह ठीक ही होगी यह भी कोई बात नहीं—क्या हम कह सकते हैं कि डायरेक्टर बरुआ की शीघ्रता में बनी हुई कृतियाँ कला की दृष्टि से किसी उच्च कलापूर्ण चित्र से किसी क़दर कम होती हैं? लेकिन "रानी" को देखने के बाद हमारी यह धारणा जाती रही है कि मि० बरुआ के हाथ से कलापूर्ण चित्र ही बनेंगे।

कलकत्ते के कुछेक व्यक्तियों के मुँह से अक्सर यह कहते सुना जाता है कि बम्बई में तो "बया चाल से" का बाज़ार गर्म है और जल्दी-जल्दी वे पैसे बटोरने में व्यस्त रहते हैं, कला-वला उन्हें क्या देगी?" किन्तु हम कहते हैं, कलकत्ते के प्रोड्यूसर्स अपनी धीमी और मीठी चाल से कौन-सा ऐसा बाक्स-ऑफ़िस-तोड़ चित्र दे रहे हैं जो बम्बई के चित्रों को पछाड़ कर आगे बढ़ा हो? कलकत्ते में अभी तक तो बम्बई के ही चित्रों का रिकार्ड है। कलकत्ते के किस हिन्दी चित्र ने अपने शहर में कङ्गन, भाभी, अछूतकन्या, तुलसीदास, पुकार की तरह सिल्वर जुबली मनाई? और इसके अलावा कौन से ऐसे चित्र हैं जो दुनिया न माने, जीवन प्रभात, अमर ज्योति, आदमी की तरह लंबे अर्से तक चले हों?

फिर क्या हमें यह न कहना पड़ेगा कि कलकत्ते के उस कलापूर्ण चित्र से बम्बई के वे "बया चाल से" चित्र ही अच्छे, जो कलापूर्ण तो हैं ही साथ ही रुपयों की थैलियाँ अपने प्रोड्यूसरों को देकर उन्हें इस फ़िल्म-व्यवसाय को आगे बढ़ाने की ओर अग्रसर

कर रहे हैं ! फिर हम नहीं समझते कि कलकत्ते के कलाकार इस धीमी चाल में क्या कुछ नफ़ा देख रहे हैं जो वे वर्षभर में ज्यादा से ज्यादा एक चित्र प्रस्तुत करके जनता के सामने रखते हैं ?

उनका ख़याल है कि वह कलापूर्ण चीज़ बनाते हैं। ठीक है, पर हम पूछते हैं, "कङ्गन" सिल्वर जुबली-सप्ताह मना रहा है, और 'पुकार' जुबली मना चुका, सम्भवतः 'औरत' भी मनावेगी और इन चित्रों के बनाने में उतना समय नहीं लगा जितना कि कलकत्ते के चित्रों में लगता है, तो क्या इन चित्रों में कला थी ही नहीं ? किसी चित्र की कहानी को कुछ घुमाफिरा कर रहस्यमय कर देना ही क्या कला है ? सीधी-सादी कहानी 'कङ्गन' जो स्वाभाविकता के साथ जनता के हृदय पर अपना प्रभाव जमाती है, वह क्या कला से च्युत है ? किसी एक भावना को जनता के सम्मुख मनोरञ्जक रूप में रख देना हमारी दृष्टि में विशुद्ध कला है।

इसलिये कला की दुहाई देकर ढील-ढाल दिखाना, हमारी समझ में नहीं आता। इस ढील-ढाल से व्यवसाय की क्षति होती ही है—काम करने वाले आर्टिस्टों को भी क्षति उठानी पड़ती है, वे बैठे-बैठे अपनी सारी की सारी कर्मण्यता खो बैठते हैं।

श्री पहाड़ी सान्याल ने पिछले दिनों अपने एक लेख में लिखा था कि किस प्रकार घण्टे पर घण्टे बिताने के बाद जब मन खिजिया-सा जाता है तो फिर प्रेम का अभिनय करने का हुक्म होता है ! दिल रोता रहता है तो मुँह में हँसी लानी पड़ती है। इसके अलावा कुछ ही दिन पहले 'युगान्तर' में श्री 'चित्रप्रिय' ने

एक बार लिखा था कि यहाँ के डाइरेक्टर किस प्रकार कला के नाम पर चित्रों को एक के बाद एक असफल करते आ रहे हैं—और जब कि यह कला ही उन उस धीमी चाल और सफलता का कारण है तो पिछले दिनों श्री निरञ्जनपाल ने जो यहाँ के डाइक्टरों पर धीमी चाल का अभियोग लगाया था उसे हम कैसे ज़्यादती मान लें ?

हमारी इच्छा है कि कलकत्ता के डाइरेक्टर इस दीर्घसूत्रता को त्यागें और बम्बई के प्रोड्यूसरों और डाइरेक्टरों की तरह शीघ्रता से अपनी कृतियों को मार्किट में लायें, जिससे व्यावसायिक फ़ायदा तो होगा ही उनका अपना भी फ़ायदा हो !

श्री चतुर्वेदी किसी हद तक मेरे इस लम्बे व्याख्यान से सन्तुष्ट ही हुए। भाभी जी का दिमाग़ शायद सोने की तरफ़ था। मित्र महोदय खुर्राटे लेने लगे थे और पञ्जाबी युवती बड़े मनोयोग से मेरी बातों को सुन रही थी, कुछ समझ रही थी कि नहीं—मैं कह नहीं सकता, मगर बीच-बीच में जब मेरी नज़र उससे मिलती तो मैं उसके आनन पर एक प्रकार की पुलक देखता।

मैंने उससे पूछा—"नींद आ रही है ?"

फ़ौरन ही वह बोल उठी—"नहीं जी, नींद कैसी ? जब आप ही बैठे हैं तो नींद कैसी ?"

मैंने कहा—"हमें नींद आने से तुम सो जाओगी ?"

"हाँ जी, ज़रूर !"

अक्सर पञ्जाबी युवती की बातें हमारी समझ में नहीं आतीं

थीं, फिर भी उसके बोलने में इतना अधिक आकर्षण था कि बिना उससे बोले या बिना उसे देखे रहा नहीं जाता था।

मैंने पूछा—"अगर तुम्हें कभी फ़िल्म में ज़ोरों से हँसना पड़े तो हँस सकती हो ?"

"क्यों नहीं जी !"

सुनते ही चतुर्वेदी जी हँसने लगे। मैंने इशारे से चुप रहने को कहा।

"अच्छा हँसो तो ?"

उसने चारों ओर देखा मित्र महोदय हम लोगों के बिस्तर पर सो चुके थे, भाभी जी भी अपने बिस्तर पर सो रही थीं।

वह बोली—"अभी जी ?"

मुझे भी हँसी आ गई—"जी हाँ।" मैंने कहा।

वह हँसने की कोशिश करने लगी, किन्तु हँसी का कोई भाव वह न ला सकी।

"अच्छा तो अब सो जाओ।" मैंने कहा।

वह बोली—"पहले आप जी !"

हम लोग हँसना ही चाहते थे कि इसी वक्त बाहर से किसी ने कहा—'नमस्ते जी !"

चौंककर हमने बाहर देखा, कोई साहब खड़े थे—सूट के ऊपर हैट पहना था, टार्च बत्ती हाथ में थी।

"एक बात सुनेंगे ?"

हम दोनों।मि० चतुर्वेदी और मैं। बाहर आकर उनके पास

खड़े हो गए । परेशानी के साथ उन्होंने कहा—"साहब ! मैं आप से कुछ मदद चाहता हूँ । मैं एम० बी० डाक्टर हूँ और दिल्ली से आया हूँ । मेरे पड़ोस की दो लड़कियों को भगा कर यहाँ लाया गया है, मुझे उनका पता चला है, पर बदमाशों के गिरोह में अकेले जाना ठीक नहीं, क्या आप उन दो महिलाओं के उद्धार के निमित्त मेरी सहायता नहीं कर सकते ?

बदमाशों का नाम सुनकर मेरे तो होश गुम होने लगे, मगर मि० चतुर्वेदी तो फ़ौरन उनके साथ जाने को तैयार हो गये, अब भला अपनी भीरु भावना को कैसे बताता—साहस बटोर कर मैं भी उनके साथ मोटर में बैठ गया । इस अपरिचित नगर के कई घुमाओं और चौराहों को पार कर हमारी टैक्सी एक एकतल्ले वाले लम्बे मकान के बाहर जाकर रुकी । मकान के अन्दर बत्ती देखते ही, मेरी हृदय की गति चौगुनी हो गई । मकान बन्द होता और वहाँ कोई न मिलता तो मैं बहुत खुश होता, और समझता चलो उद्धार भी हो गया और अपने प्राण भी बच गये, मगर अब तो बदमाश ......छुरे ... उद्धार । पसीने से मैं तर बतर हो गया । धीरे-धीरे मैं भी भगवान का स्मरण करके घर के भीतर चला गया । मगर वहाँ जाकर देखा, दो युवतियों के सिवा और कोई नहीं है ।

मौक़ा अच्छा है, दोनों को लेकर चम्पत हो जाँय, जब तक बदमाश आते हैं—मगर मैंने कहा कुछ नहीं ।

बड़ी लड़की ने हमारे पास आते ही कहा—"वे लोग आपके आने की ख़बर सुनकर हमारा गहना कपड़ा लेकर भाग गये हैं ।"

एम. बी. साहब ने कहा—"कुछ पता है, कहाँ गये हैं ?"

"क्या मालूम कहाँ गये हैं ?"

"कितनी देरी हुई ?"

"करीब आधा घण्टा हुआ !"

"अच्छा हुआ तुम बच गई हो।"

मैं चतुर्वेदी की तरफ ताकने लगा।

वह बोले—"तो हम लोग अब जायें, आप लोगों का काम तो हो गया।"

एक लड़की बोली—"नहीं हमें अकेले छोड़ कर आप लोग न जाइए, नहीं तो वे लोग फिर भी आसकते हैं।" उनके चेहरे पर मुस्कराहट थी।

डाक्टर ने कहा—"मैं कुछ नाश्ता लेकर अभी आया। आप लोग तब तक बैठिये।"

दोनों लड़कियाँ हमें एक अन्दर वाले कमरे में लेगईं, जो सभी प्रकार से सजा हुआ था। बिजली के सफ़ेद प्रकाश में कमरा फूल की तरह जगमगा रहा था। दोनों लड़कियाँ सुन्दर थीं और काफ़ी सजी सजाई थीं, ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि इन्हें भगा-कर लाया गया हो और ये किसी की सहायता की मुन्तज़िर हों।

मैंने पूछा—"आप लोगों को यहाँ आये कितना अर्सा हो गया ?"

बड़ी ने कहा—"तीन बरस !"

छोटी बोली—"नहीं अभी आरहे हैं, आपके आगे-आगे!" और दोनों की दोनों ज़ोरों पर हँस पड़ीं।

मैं गम्भीरता और आश्चर्य से चतुर्वेदी जी के मुख पर देखने लगा। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे चतुर्वेदी कोई न कोई नतीजा निकाल चुके हैं। और बात भी यही हुई, उन्होंने कहा—"ओह चलो भई, चलो!" कह कर वे उठ भी पड़े।

एक ने उनका और दूसरी ने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोलीं—

"अरे साहब। पूरी कहानी तो सुन जाइये—उद्धार।"

चतुर्वेदी ने गुस्से के स्वर में कहा—"इस तरह कुछ भले आदमियों को ठगने की चाल चलना क्या शरीफ़ का काम है—यह कहाँ का तरीका है?"

दोनों ने ज़ोर से हमें चारपाई पर बिठा कर कहा—"देखिये साहब? हम लोगों पर तोहमत न लगाइये, हमने आप को क्या ठगा है? यह तो आप लोगों के व्यापार की तरह हमारा भी व्यापार है, हमारे आदमी देखते रहते हैं, जो इस काबिल हैं। मगर अनजान लज्जा संकोच या घर से न निकल सकने के कारण इस दुनियाँ का आनन्द नहीं ले सकते, उन्हें जैसा मौका होता है वैसा कह कर इधर की ओर आकृष्ट किया जाता है, इतने अच्छे माल पर भी आप का जी न ललचाये तो हमारा दुर्भाग्य। कोई दूकान में जाकर भी सौदा नहीं खरीदता तो कोई ज़बर्दस्ती तो है नहीं, आप लोग जा सकते हैं। हमारी गाड़ी आप को छोड़ आयेगी। आपको तकलीफ़

हुई इसके लिए हम लोग माफ़ी चाहते हैं। कम से कम एक बीड़ा पान तो खाते जाइये।"

मैंने कहा—"हम लोग पान नहीं खाते"

चतुर्वेदी को अत्यधिक गम्भीर देखकर मैंने कहा—"क्यों भई, उद्धार हुआ तो?"

चतुर्वेदी गम्भीर न रह सके, ज़ोरों से हँस पड़े। वे दोनों भी हँस पड़ीं।

"यह अच्छी पब्लिसिटी है, ग्राहक को आना ही पड़ेगा!" चतुर्वेदी जी ने कहा।

छोटी लड़की ने बड़ी अदा के साथ अपना रंग-रूप झलकाते हुए कहा—"और माल भी पसन्द करना ही पड़ेगा।"

बड़ी बोली—"मुँह माँगा दाम भी देना ही पड़ेगा।" यह मेरे गले में हाथ देना चाहती थी कि मैंने कहा—"चलो भाई, इन्हीं की गाड़ी में।"

चतुर्वेदी उठ पड़े, बोले—टैक्सी का आने-जाने का भाड़ा कितना होता है।

एक बोली—"अजी साहब, आप लोगों के दीदार (दर्शन) मिल गये यह क्या कम है, भाड़ा क्या होगा? हम इतने भूखे नहीं हैं। हमारी टैक्सी योंही आपको पहुँचा देगी—मगर हम यह नहीं चाहते कि आप लोग नाराज़ होकर जायँ!"

चतुर्वेदी ने दस-दस का एक-एक नोट दोनों के हाथों में थमाया और वहाँ से बाहर आने लगे, मैं भी अपनी तरफ़ से कुछ

उद्धार करना चाहता था कि चतुर्वेदी ने आँख से इशारा किया, मैं सीधा बाहर हो गया। और हम लोग एक टैक्सी द्वारा बहुत ज्यादा रात गए अपने होटल में उपस्थित हुए।

मित्र महोदय और भाभी साहिबा अपने-अपने स्थानों पर मज़े की नींद ले रहे थे किन्तु पंजाबी युवती अभी तक हमारी बाट देख रही थी। हमें देखते ही बोली—"बड़े खराब हैं आप ?"

"क्यों क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

वह बोली—"जाते वक्त कहके भी न गये कि कहाँ जा रहे हैं, और कब तक लौटेंगे ?"

इस महा भयानक ग़लती के लिए मैं चतुर्वेदी का मुँह ताकने लगा और वह मेरा।

दोनों को चुप देख वह फिर बोली—"क्या हुआ ? कहाँ चले गये थे ?"

"कहीं नहीं, यों ही वह आदमी था न ?......" मैंने कहा चतुर्वेदी ने कहा—"बड़ा ताज्जुब है, तुमने इतना कहा तक नहीं—कैसे आदमी हो तुम ?"

"वाह ! अच्छी रही, तो तुम्हीं ने क्यों नहीं कहा ? मैं तो बदमाशों का नाम सुनते ही घबरा गया था, सोच ही रहा था कि तुम तबतक तैयार हो गये—भूल गया कहना ?" मैंने सफ़ाई देश की।

चतुर्वेदी ने कहा—"तो यह कहो बदमाशों का नाम सुनकर बरबस ही गये थे ?"

"भई मैं तो क्या कहूँ—अब तो ख़ैर ईश्वर ने ही बचाया। मगर मेरा जो हाल था..."

चतुर्वेदी ज़ोरों से हँस पड़े।

युवती बोली—"क्या बात हो गई थी, कहीं से लड़ाई-झगड़ा करके आ रहे हैं—क्या हुआ बताइये भी तो?"

मैंने कहा—"इस वक्त बताने की बात नहीं, अभी चुपचाप सो जाओ, कल सुबह।"

वह बोली—"अच्छा तो आप सो जाइये—कहीं चोट ओट तो नहीं आई?"

"अजी, नहीं जी, चोट भला क्या आती, हम तो चोट मार के आ रहे हैं--अच्छा अब सो जाओ—लो हम लोग गये सो।"

सुबह हम लोग उठना ही चाहते थे कि देखा पञ्जाबी युवती स्नानादि से निवृत्त होकर एकदम फिर बैठी है। मुझे उठा देखते ही वह मेरे पास आकर बोली—"रात को किसे बुला रहे थे आप?"

"बुला रहा था? किसे? कहाँ?"

"कुछ बोल तो रहे थे, मैंने समझा, मुझे बुला रहे हैं?"

"क्यों?"

"शाम को आप कहते थे सिर-दर्द हो रहा है, शायद मैंने समझा कुछ दवा मालिश करनी हो!"

"मैं तो शायद नहीं बुला रहा था, मगर तुम्हें सपना ज़रूर हुआ होगा!"

"नहीं जी. आप कहते थे–मैंने सिर्फ़ इतना ही सुना—कि तुम घर चली जाओ, मैंने समझा मुझे ही कुछ कहते हैं।"

'ख़ैर, अगर कहा भी तो बुला तो नहीं रहा था—तुम तो जैसे...'' कहना ही चाहता था कि भाभी जी की नींद खुल गई, मैं जल्दी से बाथरूम में घुस गया।

भाभी जी बाथरूम के बाहर धरना देकर बैठ गईं, "जल्दी करो, जल्दी निकलो बाहर।"

किसी तरह १० बजे तक सभी लोग स्नान और चाय आदि से निवृत्त हुए और मैं और चतुर्वेदी साहिब मि० मोदी के घर जाने को प्रस्तुत हुए। भाभी जी की ज़िद देखने लायक थी—"हम ज़रूर जायँगे।"

'स्टूडियो होता तो हम भी ज़रूर ले जाते, भाभी, किसी के घर पर इस तरह दल बाँध के जाना क्या अच्छा लगेगा ?'' मैंने समझाया।

मित्र महोदय ने कहा—"ठीक कहते हैं, आप लोग वहाँ से होकर आइये।"

चतुर्वेदी ने कहा—"हम लोग बिज़नेस करने जा रहे हैं, ऐसी अवस्था में सभी का जाना ठीक नहीं, देख तो आपने उन्हें लिया ही है।"

किसी तरह भाभीजी शांत हुईं और हमारी टैक्सी मि० मोदी के घर की तरफ़ चल पड़ी।

खबर पाते ही मि० मोदी ने हमें अपने प्राइवेट चेम्बर में बुलाया, जिसमें चारों तरफ़ से शान्ति सुव्यवस्था विराजमान थी। कमरे के बाहर बड़े-बड़े गमलों पर डालियाँ और लता-गुल्म सजे थे। हम लोगों के बैठते ही श्री सोहराब मोदी के बड़े भाई श्री के० एम० मोदी भी वहाँ पर पधारे और तब भाई चतुर्वेदी जिस अपने बि..नेस के लिए पधारे थे, उस विषयक बातचीत आरम्भ हुई। बातों के दौरान में चाय आदि का भी दौर चला और प्राय: एक घंटे के बाद हम लोगों ने वहाँ से रुख़सत ली।

होटल में जाते ही सभी लोग सज-धज कर तैयार थे। पञ्जाबी युवती आज अपनी स्वदेशी ड्रेस में थी, लम्बे झग्गा पर रेशमी सलवार उसकी शोभा को चौगुनी बढ़ा रहा था, काले रङ्ग की चुन्नी और भी ग़ज़ब ढाती थी। मैंने छूटते ही पूछा—"महा-रानी जी का दौरा ?"

युवती निश्चित रूप से यही समझी कि मैं उसकी ड्रेस पर कुछ मत प्रकट कर रहा हूँ, उसने नीची गरदन करके आँखों के ऊपरी भाग से मुझे एक बार देखा और मुस्काकर बोली—"बहन जी ने कहा, इसलिए पहना है।"

मैंने भाभी जी की तरफ़ देख कर कहा—"आज तो भाभी जी आपने इन्हें पूरी सब्ज़परी बना दिया है, वाह, कितनी अच्छी लगती हैं इस ड्रेस में।"

भाभी जी ने एक तीखी निगाह से मुझे देखा और कहा—सब्ज़परी न और कुछ ?"

"क्या ?" मैंने पूछा।

भाभी जी ने धीरे से मेरे कान में आकर कहा—"दिल काबू से बाहर हुआ जा रहा है क्या ?"

"देखिये भाभीजी, यह बात अच्छी नहीं"—कह कर मैं दिखावे से गुम-शुम बनकर चारपाई पर पड़ गया।

चतुर्वेदी ने भाभीजी से ही पूछा—"इसको क्या नख़रा सूझ रहा है ?"

भाभीजी ने कहा—"नख़रा उठाने वाले इतने जो हैं, इस लिए नख़रा सूझ रहा है।" और भाभी जी ने पञ्जाबी युवती की ओर उङ्गली से निर्देश किया।

मुस्काकर चतुर्वेदी ने कहा—"ओह, यह बात है ?"

"क्या बात है ?" मैंने पूछा।

"वही जो बात है, वही बात है, कोई ख़ास बात नहीं !" चतुर्वेदी ने ताने में कहा।

भाभीजी ने कहा—"चलिये न फ़िर जल्दी, प्रभात का स्टूडियो देखना है।"

चतुर्वेदी जी ने कहा—"चलो भाई, उठो न, देरी होती है !"

"मैं नहीं आता। तुम लोग जाओ।" मैंने कहा।

भाभीजी ने कहा—"हमारे कहने से क्यों जाने लगे ?"

मित्र महोदय ने कहा—"तुम्हें चुप रहना नहीं आता। पहले छेड़ती तो खुद हो।"

चतुर्वेदी ने आँख का इशारा किया, मैं उठ पड़ा। सभी लोग एक ही टैक्सी में सीधे एक बजे के लगभग प्रभात स्टूडियो में पहुँचे। बिना कुछ पूछे एक व्यक्ति हमें एक कमरे में ले गया और वहाँ बैठा कर बोला—"किस से आप लोगों को मिलना है ?"

मैंने और चतुर्वेदी ने अपने-अपने परिचय-पत्र डाइरेक्टर शान्ताराम के पास देने को कहा। वह व्यक्ति थोड़ी ही देर में आकर बोला—"आप लोगों को बुलाया है।"

हमारा दल डाइरेक्टर शान्ताराम के कमरे में पहुँचा। परिचय-सम्मेलन के बाद, सब से पहले बिना किसी भूमिका के मैंने प्रश्न किया—"आप प्रभात छोड़ कर फ़िल्म एडवाइज़री बोर्ड में क्यों जा रहे हैं ?"

प्रश्न के ढङ्ग पर आश्चर्य का-सा भाव लेकर मि० शान्ताराम ने पहले गौर से मेरे मुख पर देखा और फिर मुस्काकर कहा—

"क्यों ?"

"क्यों कि आप यदि प्रभात में रहते तो देश को कुछ कला-पूर्ण कृतियों को तो भेंट करते, आपकी कला के भक्त देखते ही रह जायें और आप चुपचाप गुलामी की जञ्जीर गले में बाँध लें—यह क्यों हो ?"

मि० शान्ताराम के हाथ में हिन्दी की लिखी शायद कोई कहानी थी, क्षणभर उसकी तरफ़ देखकर उन्होंने कहा—'मैं वहाँ जाकर भी अपनी मातृभूमि की क्या सेवा कर सकता हूँ, यही तो देखने जा रहा हूँ।" और कहकर मि० शान्ताराम के चेहरे पर एक

प्रकार का तेज उद्‌भासित होने लगा। आँखें चमकती थीं, किन्तु पेशानी पर खम पड़े थे और स्वर में दृढ़ता थी।

मैंने कहा—"मातृभूमि की सेवा, नौकरशाही की चहारदीवारी के अन्दर रह कर आप कर सकेंगे, क्या इस पर आपको विश्वास है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मैं जब देखूँगा मेरी स्वाधीनता में किसी प्रकार की अड़चन पड़ रही है तो मैं तुरन्त वहाँ से अलग हो जाऊँगा। सरकार यदि मेरी मातृभूमि के लिए मेरी कुछ सेवा लेना चाहती है, तो क्यों न मैं अपनी सेवायें अर्पित करूँ?"

मैंने कहा—"आपके ध्येय की मैं प्रशंसा करता हूँ। क्या यह निश्चय हो गया है कि आप प्रभात से एकदम अलग हो गये हैं?"

"अभी निश्चय नहीं हुआ।"

"अभी आपके स्टूडियो का प्रोग्राम क्या है?"

"राजा नेने एक सामाजिक चित्र बनायेंगे, रामशास्त्री की भी कार्यवाही आरम्भ कर दी गई है। दामले और फत्तेलाल इसे बनायेंगे।"

"अपनी भावनाओं को चित्रों में व्यक्त करने का आप का क्या कोई विशेष तरीका है?"

"मैं सदा यही सोचा करता हूँ कि यदि हमें दुनिया को मनोरञ्जन ही देना है तो उसके द्वारा क्यों न कोई आदर्श प्रदान किया जाय, क्यों न कोई शिक्षा दी जाय, और मैं चाहता हूँ प्रत्येक

डायरैक्टर यदि इसी ध्येय को लेकर आगे बढ़े तो सिनेमा-व्यवसाय हमारे देश की भलाई में बहुत बड़ा कदम रख सकता है।"

इसी वक्त चाय आई और बातों का सिलसिला बदला। मैंने अपनी डायरी में मि० शान्ताराम के हस्ताक्षर लिए और उन्हीं के दिये हुए गाइड के द्वारा हमने उनका सारा स्टुडियो देखा। लेबोरेटरी देखी, आर्टिस्टों के कमरे देखे, और सब में ज्यादा जिस चीज़ ने हमें प्रभावित किया वह था उनका आर्ट डिपार्टमेंट, जहाँ, रामशास्त्री और बौद्ध कालीन किसी चित्र के लिये सेट और मिट्टी के चित्र तैयार किये जा रहे थे। हमारे साथ वाले गाइड ने हमें पुराने सेट भी दिखाये जो अमृतमन्थन, अमरज्योति, गोपालकृष्ण आदि चित्रों में काम आ चुके थे। हमने वह जगह और वह पहाड़ भी देखा जो "आदमी" और "पड़ोसी" के सुरंग वाले सीनों में काम आ चुके थे। काफ़ी देर तक देखने के बाद हम लोगों के मन में और कुछ देखने की इच्छा नहीं रही। सीधे हम लोग होटल आने को प्रस्तुत हुए।

भाभीजी ने कहा—"आप तो उनसे शास्त्रार्थ ही करने लग गये थे।"

चतुर्वेदी ने कहा—"पूछा भी तुमने डिक्टेटरी ढंग से था।"

पंजाबी युवती बोली—"वह आदमी कौन था ?"

मैंने कहा—"कौन आदमी ?"

वह बोली—"वहीं जहाँ पर हमने चाय पी थी ?"

मैंने भाभी जी की ओर देख कर कहा—"समझाइये इन्हें, डायरेक्टर शान्ताराम कौन था ? सारी रामायण पढ़कर.. "

भाभी जी ने टोका—"तो समझा क्योंनहीं देते, उस बेचारी को क्या पता।"

"मगर फ़िल्मों में काम करने का तो खूब पता है ?" मैंने उत्तर दिया।

इसी वाद-विवाद के बीच जब हम लोग होटल में पहुँचे तो मालूम हुआ हम लोगों की गाड़ी ७ बजे ही छूटने वाली है। जल्दी-जल्दी सामान बाँध कर हम लोग स्टेशन पर पहुँचे।

पिछली रात और दिन भर की परेशानियों से मुझे तो ट्रेन में बैठते-बैठते ही नींद आने लगी। पञ्जाबी युवती मेरी सीट के पास ही बैठी ग़ौर से मेरी ओर देख रही थी, बोली—"आप सो जाइये।" और वह कोने की तरफ़ खिसक गई। मैं लेटते ही नींद की गोद में मग्न हो गया।

ट्रेन जब विक्टोरिया टर्मिनस पर पहुँची तो उस वक्त ६ बजे का समय था। पञ्जाबी युवती ने धीरे से मुझे जगाया।

प्लेटफार्म पर मेरे अनुरोध करने पर भी मित्र महोदय, भाभी जी तथा चतुर्वेदी जी कोई भी मेरे साथ भाई नैथाणी जी के यहाँ जाने को प्रस्तुत नहीं हुआ और उनके अनुरोध करने पर भी मैं साथ होटल में नहीं गया। लिहाज़ा मुझे अकेले ही बी० टी० से शान्ताक्रुज जाना पड़ा। वहाँ भाई नैथाणी जी जैसे मेरी प्रतीक्षा ही में बैठे थे।

क्या-क्या हुआ, और क्या-क्या किया सभी कुछ सविस्तर उन्हें सुनाया और भोजन समाप्ति पर सोने की चिन्ता करने लगा कि उसी वक्त मुझे कुन्तल की याद आई और मैंने उसका फ़ोटो देखने के लिये अपना सूटकेस खोला ही था कि देखा उसमें दो-तीन साड़ियाँ और जम्पर रखे हैं। उन्हें देखते ही समझने में बाकी न रहा कि यह शैतानी उसी पञ्जाबी युवती की है। जल्दी से सूट-केस बन्द करके मैं बाहर आने लगा कि देखा कुन्तल अपने बरामदे में खड़ी इधर ही देख रही है। मुझे देखते ही उसने धीरे से वहीं से हाथ जोड़े और मुस्काई, मैंने भी इधर-उधर देखकर मुस्का-कर हाथ जोड़ दिये।

बिस्तर पर लेटते ही मैं मधुर कल्पनाओं के बीच निद्रा मग्न हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही मैं बी० टी० की तरफ़ होटल में गया। देखा, चतुर्वेदी जी और मित्र महोदय अभी तक नींद में हैं। पञ्जाबी युवती स्नानादि से निवृत्त होकर उदासी लिए बैठी है। भाभी जी बाथ रूम में हैं।

मुझे देखते ही पञ्जाबी युवती मुस्काई। मैंने चारों ओर देखकर उसे इशारे से बाहर बुलाया। वह और मैं बाहर रेलिंग पर खड़े हो गये। मैंने पूछा—"तुमने अपने कपड़े मेरे सूटकेस में क्यों रख दिये थे?"

"वहाँ पर जल्दी में और क्या करती, नहीं तो पीछे आप कहते कि देरी करती रहती है।"

"यह अच्छी रही कोई देखता तो क्या होता।"

वह चुप हो गई। मैंने कहा—"हम आज जायँगे, और अगर मौक़ा आयेगा तो तुम्हें कलकत्ता बुला लेंगे। तुम तब तक यहीं रहना।" और मैंने कुछ रुपये निकाल कर उसके हाथ में दिये। उसने चुप चाप ही उन्हें ले लिया, और अनमने मन से भीतर चली गई। मैं वहीं खड़ा रहा। क्षण भर बाद वह फिर आकर बोली—"आप बड़े ख़राब हैं!"

"क्यों?"

"कल वहाँ क्यों चले गये?"

"क्यों?"

"हमें नींद ही नहीं आई।"

"अच्छा जी; अब तो मेंढकी को भी ज़ुकाम होने लगा है! क्यों, क्यों नींद नहीं आई?"

"क्या मालूम?"

"तो तुम्हारी नींद के लिए मैं क्या करता?"

मुँह भारी करके वह बोली—"आप तो नाराज़ हो जाते हैं, ज़रा सी बात पर।"

"तुम्हारी बात ही ऐसी होती है।"

जल्दी ही वह बोली—"कैसी?"

उसे क्षण भर ग़ौर से देखकर मैंने कहा—"बुद्धूपने की!"

"हटिये।" कहकर वह भीतर चली गई। मैं भी भीतर गया देखा भाभी महाशया अपने सोलह श्रृंगार में व्यस्त हैं। मुँह भारी देख मैं घबराया, कहा—"नमस्ते भाभी जी!"

बिना देखे भाभी जी ने धीरे से ही कहा—"नमस्ते !"

भाभी जी ! और शीशे के बीच में खड़े होकर मैंने कहा—"क्यों, नाराज़ क्यों हैं, भाभीजी ?"

"हमें नाराज़ होने का अधिकार ही क्या है, और किसे पर्वाह हमारे नाराज़ होने की ?" वे बोलीं।

"मगर बात क्या है, कोई मेरा कसूर ?"

"कल यहाँ रह जाते तो क्या हो जाता, क्या आप समझते हैं, आप को हम लोग लूट लेते।"

"ओह, इसीलिए ? मैंने तो समझा क्या मुसीबत हो गई। ओहो, ज़रा-सी बात है समझने की, अगर मैं यहाँ रह जाता तो मेरे भाई साहब नाराज़ हो जाते—"

बात काट कर भाभी जी बोलीं—"उनकी नाराज़ी की तो इतनी—"

बात काटकर मैंने कहा—"ओहो ! आप सुनिये भी तो ? वे हैं मेरे बड़े भाई—न जाने मेरे बारे में क्या-क्या शंका कर बैठते, कहते अपना घर छोड़ कर होटल में रहने का क्या तरीका है—आप को खुद समझना चाहिये भाभीजी, इसीलिए मुझे उतनी रात को भी वहीं जाना पड़ा।"

"अच्छा महाराज, आप जीते मैं हारी। अब ज़रा इन लोगों को भी उठाइये, और चाय का आर्डर दीजिये—ये बेचारी तो रात भर सोई ही नहीं।"

"अब फिर भाभी जी…… ……"

"अच्छा, अच्छा उठाइये इन्हें।"

मैंने एक-एक करके चतुर्वेदी जी और मित्र महोदय को उठाया।

सुबह के चाय-नाश्ते के बाद हम लोगों ने स्नान किया और मि० चतुर्वेदी शालीमार पिक्चर्स, अमर पिक्चर्स, ताजमहल पिक्चर्स और रणजीत स्टूडियो में गये।

शालीमार में मि० अहमद से हम लोगों की प्रचार के विषय पर बातचीत हुई। उस वक्त "एक रात" का श्री गणेश ही हुआ था।

अमर पिक्चर्स में श्री चिमनलाल देसाई, डाइरेक्टर चौधरी श्री वीरेन्द्र देसाई और मिस नलिनी जयवन्त से भेंट हुई। 'आँख-मिचौनी' चित्र का एक सीन लिया जा रहा था। श्री चिमनलाल देसाई ने हमें कलकत्ते के पत्रों के लिये नलिनी जयवन्त के कुछ चित्र दिये। हमने कुछ चित्रों पर उसके हस्ताक्षर भी करा लिये। यहीं पर नृत्य विद्या के विशारद छज्जू महाराज अपनी पत्नी और लड़की कौशल्या को लेकर वहाँ पर उपस्थित हुए। कौशल्या उस वक्त अपनी बाल्यावस्था को तोड़ कर किशोरावस्था में प्रविष्ट हो रही थी। आँखों में मस्ती छाई हुई थी। उससे पहले हमने उसे "संस्कार" चित्र में एक ११ वर्ष की बच्ची के रूप में देखा था। और वहाँ पर उसका वह रूप देख केवल हमें ही चकित नहीं होना पड़ा बल्कि सेठ चिमनभाई भी चकित होकर कहने लगे—"नलिनी, ज़रा कौशल्या के साथ खड़ी रह कर देखें कौन बड़ा है ?"

देखा गया कौशल्या एक इञ्च ऊँची निकली।

वहाँ से हम लोग ताजमहल के स्टुडियो में पहुँचे, मि० मुगनी से पहले बात-चीत हो चुकी थी, जाते ही वे और भाई पृथ्वीराज हमें मिले। उनके "उजाला" चित्र के विषय में बातचीत हुई।

मुझे वहीं से कश्यप जी को टेलीफ़ोन करना था और मैं टेलीफ़ोन वाले कमरे में गया ही था कि देखा नसीमबानो टेलीफ़ोन की किताब लेकर वहीं पर बैठी हैं।

मुझे लौटता देखकर उन्होंने कहा—"टेलीफ़ोन करेंगे, कर लीजिये।"

मैंने टेलीफ़ोन पर कश्यप जी से बातचीत की और अपनी डाक के बारे में पूछा, उन्होंने बहुत बड़ी डाक आई होने की सूचना दी।

टेलीफ़ोन छोड़ते ही नसीमबानो ने कहा—"आप लोग बाहर से आये हैं?"

"जी हाँ, कलकत्ता से आपका पिक्चर लेने आये हैं! कैसा पिक्चर है "उजाला"?"

"मेरी ज़िन्दगी का सबसे अच्छा पिक्चर है।"

नमस्ते कहकर मैं बाहर आ गया। मि० मुगनी से बातों का सिलसिला ख़तम कर हम लोग रणजीत स्टुडियो में गये। वहाँ हमने ईश्वरलाल से भेंट की, उन्होंने अपनी एक कविता भी हमें दी और कहा कि मैं गुज़राती भाषा का अच्छा कवि हूँ।

"तानसेन" आदि चित्रों के म्यूज़िक डायरेक्टर श्री खेमचन्द्र प्रकाश से भी मुलाक़ात हुई, वे मेरे साथ पहले न्यूथियेटर्स में काम

कर चुके थे। मिस माधुरी से भी चलते-चलाते कुछ बातें होलीं और अब मैं मि० चतुर्वेदी के साथ उनके होटल में भाभी जी आदि से आख़िरी मुलाक़ात करने गया, मुझे उसी शाम को कलकत्ता रवाना होना था। मि० चतुर्वेदी अभी दो-चार दिन वहीं और ठहरने वाले थे।

हमने पहुँचते ही देखा, भाभी जी बड़ी उदास बैठी हैं। घबरा कर पूछा—"क्या बात है भाभी जी ?"

"कुछ नहीं, यों ही—आइये !" भाभी ने कुछ अनमने मनसे कहा। किन्तु इस "यों ही" पर विश्वास करने को दिल न चाहा। मैंने कहा—"भैया कहाँ हैं ?"

"क्या जाने कहाँ हैं, कहीं सिनेमा देखते होंगे !" भाभी ने उठते हुए कहा।

मैंने कहा—"मै आज जा रहा हूँ ?"

भाभी बोलीं—"तो आप एक दिन और नहीं ठहरेंगे ?"

"बात यह है"—मैंने कहा—"आपका तो कुछ निश्चय नहीं, अगर कल ही आप लोग चल पड़ें, तो मैं एक दिन और ठहर जाऊँ ?"

भाभी बोलीं—"मेरा मन नहीं लग रहा—मैं यहाँ एक दिन भी नहीं ठहर सकती, कल हम ज़रूर चल पड़ेंगे !"

मैंने कहा—"अच्छा, कल सही—मगर अभी आपको क्या हुआ है, आप उदास क्यों हैं ?"

भाभी बोलीं—"कुछ नहीं, उस लड़की का क्या किया आपने ?"

मैंने कहा—"किसका—उस पंजाबी लड़की का ? मैं क्या करूँ बोलिये, यदि कलकत्ते में होती तो मैं कुछ कोशिश भी करता!"

हम लोगों की बातें हो ही रही थीं कि वह लड़की इसी समय हमारे पास आई और 'नमस्ते' करके एक ओर पर बैठ गई।

मैंने अपनी पुरानी बात फिर दोहराई, कहा "हमलोग तो कल जा रहे हैं, अगर कुछ हो सका तो हम आपको कलकत्ता बुला लेंगे।"

किन्तु वह न मानी—बोली—"मुझे साथ लेते चलिये, मैं आप से हाथ जोड़ती हूँ, मैं यहाँ नहीं रहूँगी।"

मैंने कहा—"ऐसे ही बिना समझे-बूझे ले जाना अच्छा न होगा, हम बुला लेंगे।"

वह उदास हो गई। भाभी जी चुप थीं।

मैं उठा और जाने को प्रस्तुत हुआ। भाभी जी ने कहा—"जाने लगे हैं ? और खाना ?"

मैंने कहा—"खा लेंगे। अभी तो जाने दीजिये!"

वह बोलीं—"वाह ! अच्छी रही, मैं अभी तक बैठी हूँ और आप खिसकने लगे हैं।"

फिर तो खाना ही पड़ा।

भाभी जी बोलीं—"देख रहे हैं बाबू साहब अभी तक नहीं पधारे, आप न आते तो कैसे भूत की तरह बैठी रहती।"

"आते ही होंगे।" मैंने कहा।

वहाँ से मैं सीधा शाँताक्रुज भाई साहब के मकान पर गया। भाई साहब मेरी प्रतीक्षा ही में थे और भी मेरे मित्र वहाँ पर जमा हो रहे थे। जाते ही मैंने कहा—"आज मैं नहीं जा रहा हूँ। कल जाऊँगा।"

देखा, दूर से कुन्तल खड़ी मुसकरा रही है। आज वह कुछ अच्छी दीख रही थी। खुली लटों में उसने चपल साँवला चेहरा घिरा हुआ था। कल ही की तरह उसने फिर नमस्कार किया और मैंने भी उत्तर दिया।

बम्बई से वापिस

दूसरे दिन हम ठीक समय पर बी० टी० पर उपस्थित हुए। बम्बई मेल तैयार था। सेकिण्ड क्लास के कमरे में मित्र महोदय भाभी जी के साथ बैठे नज़र आए। मैंने चुपचाप रहना ही अच्छा समझा। इधर इन्द्र जी और बम्बई-प्रवासी हमारे गढ़वाली भाइयों ने स्टेशन पर आने की कृपा की। एक अभूतपूर्व मिलन वह था। जिस स्मृति को लिये मैं लौट रहा था उसका वर्णन किया नहीं जा सकता। पं० इन्द्र का 'मित्र' शब्द कानों में गूञ्ज रहा था। उनकी माला सारे कमरे को सुगन्धमय बना रही थी।

पञ्जाबी युवती के कपड़ों को मैं अलग से लपेट कर लाया था, शायद भाभी जी को विदा करने स्टेशन पर आये, पर वह नहीं दीखी, मैं चुप हो रहा—किसी को कुछ भी न कह सका!

गाड़ी चल पड़ी थी। यकायक मेरी नज़र अपनी सीट के पास वाले पैसेञ्जर पर पड़ी—वही पंजाबी युवती बैठी थी। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा—"तुम!"

उसने सिर झुका दिया। हमारे कम्पार्टमेण्ट में ५। ४ ही व्यक्ति थे, जो दूर-दूर बैठे अपने ही कामों में व्यस्त थे।

मैंने पूछा—"टिकिट ले लिया है?"

युवती ने अपना बटुआ मेरी ओर बढ़ा दिया। बटुआ खोल कर देखा तो टिकिट के अलावा नोटों की एक गड्डी भी थी। मैंने बन्द करके उसे वापस करना चाहा, वह बोली—

"क्या होगा, अपने पास रखिये।"

किसी के सामने कुछ कहने का साहस न था, और कहता भी क्या—चुप रह गया।

विक्टोरिया टर्मिनस से कल्याण पर गाड़ी रुकी। मित्र महोदय मुझे खोज रहे थे। मैंने भीतर से आवाज़ दी—वे भीतर आये। युवती को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये, और एक क्षण मुझे देख वापस लौट गये।

मैं अकचका कर देख रहा था, उतरना चाहता था कि सीटी पड़ गई। गाड़ी चल दी।

कल्याण से गाड़ी जब आगे बढ़ी तो मेरे मन में दो बातें पैदा हो गईं। एक तो यह कि मित्र महोदय पुनः शायद गाड़ी में नहीं चढ़ पाये हैं! और दूसरी यह कि उन्हें मुझ पर कुछ सन्देह हो गया है। सन्देह का कारण पर्याप्त था। वह पञ्जाबी युवती मेरे कमरे में बैठी थी, और मैं मित्र महोदय के साथ न बैठ कर दूसरे कमरे में था। मित्र महोदय की तो चिन्ता नहीं थी किन्तु भाभी जी क्या समझेंगी—सोचते ही मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा!

गुस्सा आया युवती को अच्छी तरह डाँट दूँ, किन्तु आस-पास आदमी थे, कैसे क्या कहता और कहता भी किस बहाने पर, वह सफ़र कर रही है, मैं उसे क्या कह सकता था ? मैंने युवती की ओर गुस्सा भरी दृष्टि से देखा, किन्तु उसका कोमल लावण्य-मण्डित मुख देख कर मेरा गुस्सा अपने आप ही भाग गया—कैसे कोई आदमी किसी सुन्दरी युवती पर अत्याचार कर पाते हैं, उसे डाँट-फटकार सकते हैं, मैं सोच भी नहीं सकता हूँ।

वम्बई मेल बिजली के ज़ोर पर हवा से बातें कर आगे बढ़ रहा था। कल्याण से इगतपुरी तक के जो प्राकृतिक दृश्य हम लोगों ने वम्बई जाते देखे थे वे इस समय अन्धकार में डूबे हुए थे। मैं इगतपुरी स्टेशन की बाट जोह रहा था कि कब गाड़ी खड़ी हो और कब मैं मित्र महोदय के सेकिण्ड क्लास कम्पार्टमेंट में जाकर एक्सप्लेनेशन दूँ कि मैं बेकसूर हूँ। और भाभी जी अगर इस पर भी न मानें तो या इधर या उधर !

सोच ही रहा था कि स्टेशन इगतपुरी आ गया। गाड़ी का इञ्जन इस स्टेशन पर बदल जाता है—बिजली का इञ्जन छूट जाता है और कोयले से काला बनाने वाला इञ्जन जुड़ जाता है। वम्बई मेल का वह मज़ा भी किरकिरा हो जाता है। गाड़ी से बाहर मुँह करते मेरी जैसी बड़ी-बड़ी आँखों वाले की आँखें अछूती नहीं रहतीं। कोयलों की चिनगारियाँ आँखों में बैठ कर आँसू बहाने लगती हैं। गाड़ी अभी रुकी भी नहीं थी कि मैं प्लेटफ़ार्म पर उतर पड़ा और मित्र महोदय के कमरे की ओर लपका। अन्दर जाकर

देखा। देखा भाई साहब एक मेगज़ीन पर आँखें गड़ाये हुए हैं और भाभी जी कपड़ा ओढ़ कर आँखें बन्द किए लेटी हुई हैं।

हड़बड़ा कर मैंने कहा—"भाभी, भाभी !"

भाभी ने आँखें खोलीं—कहा—"आप तो बड़े चालाक हैं ? कहा कुछ और करते कुछ हैं ?"

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि मित्र महोदय ने कहा—"तो हमारा क्या बिगाड़ा—तुम भी हरेक बात में अड़ङ्गा डालती रहती हो।"

भाभी बोलीं—"मैं क्या अड़ङ्गा डाल रही हूँ, मेरी तरफ़ से कुछ करें मगर कहा भी जाता है तो अपने ही आदमियों को !"

मैंने कहा—"भाभी जी, कहिये, क्या चालाकी की—क्या मैंने आपका कहना नहीं माना ?"

मित्र बोले—"देखिये मिस्टर, आप कुछ कीजिये, हमें इसमें कुछ भी कहने को नहीं, मगर आप एक भले घर के लड़के हैं, अपनी इज़्ज़त को बचाकर रखना अच्छा है। आप जानते हैं वह कौन है, जो अपना घर छोड़ के आ गई है, वह भला......"

मैंने खीझ कर कहा—"मगर आप कहना क्या चाहते हैं, मैं उस लड़की को ले जा रहा हूँ। आप जानते हैं, वह पहले से ही उस कमरे में आकर बैठी हुई थी, और मैं तो भाभी, आपके सामने ही कल रात को कह आया था।"

भाभी का लाल चेहरा कुछ फीका पड़ने लगा—बोलीं—"आप उसे नहीं लाये हैं ? उसका भाई कहाँ है ?"

मैंने कहा--"मैं उसे नहीं लाया--भाई उसके साथ नहीं है।"

भाभी बोलीं--तो कहाँ है ?"

मैंने कहा--"क्या मालूम ?"

भाभी बोलीं--"पूछा नहीं ?"

मैं बोला--"मैं क्यों पूछता--मैंने उससे अभी तक कोई बात नहीं की। हाँ, उसने अपना बटुआ और कलकत्ते का टिकट मेरी तरफ फेंक दिया था--यह है।"

हम सभी ने बटुआ देखा। खुशबू से सारा कमरा भर गया। रुपये गिने। पूरे ४५०।=) थे, साथ में टिकिट था।

भाभी जी सोचने लगीं। मित्र ने कहा--"आप इस कमरे में चले आइये। उसे यह बटुआ लौटा दीजिये और छोड़ दीजिये।"

भाभी बोलीं--'नहीं, उसे इस हालत में छोड़ना ठीक नहीं। उसे आप ले जाकर कहीं काम पर लगा दीजिएगा।"

मैं उठा और जाना चाहता था कि गाड़ी चल पड़ी।

भाभी बोलीं--"अब तो बैठना ही पड़ गया। ख़ैर, थोड़ी देर कष्ट सह लीजिये। हमारे साथ ही सही--दूसरे स्टेशन पर मिल लीजियेगा उससे ?"

मैंने कहा--"देखिये भाभी। तंग न कीजिए, नहीं तो मैं चलती गाड़ी से कूद पड़ूँगा।"

भाभी बोली--"अच्छा ! इतना दिल चाहता है, उसे देखने को ? धन्य है उस लड़की के लिए, जिसने एक ही दिन में आपको मोह लिया।"

मैं भाभी की ओर गुस्से से देखने लगा । भाभी, मुस्करा दीं । उनकी मुस्कराहट से मेरा गुस्सा काफ़ूर हो गया, मैं भी मुस्करा दिया । किन्तु एक क्षण में ही मुझे यह अनुभव हुआ कि युवती को तीसरी श्रेणी के कमरे में अकेला छोड़कर अच्छा नहीं किया और भाभी जी कहती थीं वह ठीक भी तो था—न जाने क्यों उस युवती को देखने के लिये मेरा दिल इतना छटपटा रहा था । सोचता था, बेचारी क्या समझती होगी, कहाँ चला गया एकाएक ? अब मैं दूसरे स्टेशन के इन्तज़ार में था—भाभी जी का चाँद-सा सुन्दर मुखड़ा मेरी आँखों के सामने था ?

बम्बई मेल रात के अन्धेरे में हवा से बातें करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था, और मुझे भाभी जी पर गुस्सा आ रहा था, इसलिए नहीं कि उन्होंने मुझे अपने कमरे में रोक लिया था, बल्कि इसलिए कि वे मेरे मनकी छटपटाहट का अन्दाज़ा क्यों लगा गई है, और जिस युवती की मैं उपेक्षा कर रहा हूँ उस पर इतना ज़ोर क्यों दे रही हैं ।

बम्बई मेल का वह छोटा-सा दो-सीटर कम्पार्टमेंट था । एक सीट पर मित्र महोदय आसीन थे और दूसरी पर भाभी जी । मैं अभी तक एक कुर्सी पर बैठा था । बदला लेने की मैंने ठानी । भाभी जी से कहा, "भाभी जी आप कहती थीं, बम्बई से कुछ चनाचूर ले जायँगी, क्या लाई हैं, भूख लगी है, दीजिये न, खाया जाय ।"

मुसकरा कर भाभी बोलीं—"क्यों बात बदल रहे हैं, अब तो जो होना था हो गया, अच्छा ही है बिना कोशिश के काम बन गया !"

मैंने कहा—"भाभी जी, सच कहता हूँ दीजिये न। रात को खाना नहीं खाया। भूख लगी है।"

भाभी ने कहा—"सच ही अगर भूख लगी होती तो मैं कई चीज़ें खिलाती, मेरा भाग न जाग जाता कि आप मुझ से माँग रहे हैं।"

मैंने कहा—"अच्छा आप लोगों को कौन सिखाता है कि किसी पर विश्वास न किया करो।"

भाभी बोलीं—"दूँ ? खायेंगे ?"

मैंने कहा—"ज़रूर—दीजिये तो !"

भाभी बिस्तर से उठीं और पास में रखी पिटारी के पास गईं ही थीं कि मैं झटपट उनकी सीट पर जा लेटा और कहा—"बस, भाभी जी अब तकलीफ़ न कीजिये, बैठ जाइये उधर कुर्सी पर।"

"अरे बाप रे। इतनी चालाकी ? तभी तो मैंने कहा आज कैसे माँग रहे हैं, जिसे चाय पीते-पीते कभी भूख ही नहीं लगती उसे आज कैसे भूख लग आई ?" मैं आँखें बन्द करके चुपचाप हो गया।

भाभी जी ने फिर कहा—"अगर सोने की ही मंशा थी तो पहले ही क्यों नहीं कहा; मेरा अपमान करना क्या ज़रूरी था ?"

"अरे बाप रे। अपमान ?" मैंने चौंक कर कहा—"आप क्या कहती हैं भाभी, आपका अपमान, आइये अपने आसन पर, क्षमा चाहता हूँ।"

"मैं आसन के लिये कहती हूँ ? मैं तो खाने के लिये कह रही हूँ, मुझ से माँगा और खाया नहीं।"

भाई साहब ने कहा—"हाँ साहब, है तो अपमान की ही बात—अच्छा लाओ, दो फिर खायें कुछ।"

मैंने भी कहा—"दीजिये भाभी जी, खायेंगे।"

भाभी जी ने दो कागज़ों में थोड़ा कुछ रख पर हमें दिया। इसी समय देखा गाड़ी की रफ़्तार धीमी हो गई है, शायद कोई स्टेशन आया है। भाभी जी ने कहा—"देखिये ! इसे खा के उठना होगा।"

मैंने कहा ज़रूर।"

स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। मैं चुपचाप बैठा अनमने मन से चनाचूर चबा रहा था और चाहे कितनी ही देर क्यों न हो जाती, मैं एक कदम भी नहीं हट सकता, मगर भाभी जी ने कहा कुछ और ही—

"हाँ आप जाइये, मगर उस बेचारी को कुछ कहियेगा नहीं, और देखिये; फिर अगले स्टेशन पर यहाँ आइयेगा !"

जल्दी-जल्दी मैं नीचे उतरा और अपने कमरे की ओर जा रहा था कि युवती का सिर बाहर निकला हुआ मुझे दूर से दिखाई दिया। दो एक शौकीन तबियत युवक हमारे कम्पार्टमेंट के बाहर उस अन्धेरे स्टेशन पर भी चहलकदमी करते दिखाई दिये। मुझे देखते ही युवती सम्हल कर बैठ गई। कमरे में जाते ही मैंने देखा युवती की आँखें रोते-रोते सूजी हुई हैं। पास वाले एक यात्री ने

बड़ी धमकी के स्वर में कहा"—आप लोग भी कैसे हैं जनाब। औरतों को अकेला छोड़ कर गाड़ी से गायब हो जाते हैं। वह तो बेचारी रोते-रोते हैरान, चेन खींचने के लिये तैयार। वह तो हमने किस्सा पूछा, तब धैर्य दिलाया कि दूसरे कमरे में बैठे होंगे, आ जायँगे—तब वह मानी, आपको ऐसा नहीं करना चाहिये।"

मैं हैरान हो गया। झूठ मूठ का झमेला मेरे सिर पर पड़ा, पर चुप हो गया, बोलने को कुछ था ही नहीं।

इसी वक्त एक युवक, जो उसी कमरे में बैठे थे आकर, बोले—"नमस्ते महाराज।"

"नमस्ते" कह कर मैं उनका मुँह ताकने लगा—वे बोले—"आप मुझे नहीं जानते मगर मैं आपको जानता हूँ, आपके लेख अखबारों में पढ़ता ही रहता हूँ। आपका 'विचार' भी मैं भागलपुर में खरीदता रहता हूँ—बड़ा ही अच्छा पत्र है।"

मैंने कहा—"आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ बैठा हूँ?"

'आपके बेग पर नाम छपा है, वही पढ़ा है।"

मैंने कहा—"आप कहाँ से आ रहे है?"

वह बोले—"मैं भी बम्बई से ही आ रहा हूँ। यही इनका रोना सुन कर यहाँ पर आया था। और उसने एक सिगरेट मेरे हाथ में देते हुए पूछा:—"न्यूथियेटर्स का क्या हालचाल है, कानन ने शादी की या नहीं?"

गाड़ी जा रही थी। बाईं ओर युवती थी—शर्मीली और आकर्षक आँखों वाली, मानों मेरे हरेक आदेश को सुनने के लिये चुपचाप प्रस्तुत, दाहिनी ओर वह नवागत युवक था, हट्टाकट्टा, जवान और फ़िल्मों का तथा फ़िल्मवालों का आशिक़, सामने दो एक यात्री, और मेरे दिमाग़ में युवक का यह प्रश्न था—"न्यूथियेटर्स का क्या हाल है और कानन ने शादी की या नहीं ?"

मैंने कहा—"कानन की शादी के बारे में सुना तो मैंने भी है, बाकी भगवान जाने।"

"तो आपलोग क्या हमेशा उन्हीं के साथ नहीं रहते ?"

"किसके ? कानन बाला के साथ ?" आश्चर्य से मैंने देखा !

"इन्हीं सभी आर्टिस्टों के साथ ?"

मैं ज़ोर से हँस पड़ा—युवक चकित होकर देखने लगा !

मैंने कहा—"आप हम लोगों को क्या समझते हैं, हम भी इसी दुनिया के आदमी हैं। आपका क्या यही ख़याल है कि जितने फ़िल्मों में काम करते हैं सभी एक ही मकान में रहते हैं ?"

वह बोले—"हाँ, क्यों नहीं रहते ?"

"आपका ख़याल ग़लत है, हमलोगों का काम और बाक़ी अपना-अपना घर, कोई क्या करता है क्या नहीं, इससे किसी को क्या ?"

"अच्छा ये तो बताइये, बरुआ और जमुना की शादी हो गई है ?"

"मुझे नहीं मालूम ! मैंने नहीं सुना !"

"आपके खयाल में हिन्दुस्तान की श्रेष्ठ अभिनेत्री कौन है ?" वह बोले।

"आप किसे समझते हैं ?"

"कानन बाला !"

"ठीक है।"

"कानन बाला को कितनी तनख़ाह मिलती है ?"

"क्या मालूम !—मगर क्या होगा इन बातों से ? आपको कुछ फ़ायदा होगा इससे ? आप क्यों ऐसी बातें पूछ रहे हैं ?" मैंने कुछ रूखी आवाज़ में कहा।

वह बोले—"मालूम होता है आप नाराज़ हो गये हैं।"

मैंने कहा—"नाराज़ी की बात नहीं, पर व्यर्थ की बातों से क्या फ़ायदा ?" मैं चुप हो गया। युवक ने दूसरा सिगरेट मेरे हाथ में दिया। मैंने पूछा—"आप कहाँ जायेंगे ?"

"जी मैं जबलपुर जा रहा हूँ। मेरी बड़ी भारी इच्छा है कि आप भी एक दिन के लिये वहाँ ठहरें !" बहुत बड़ी इच्छा होते हुए भी मैंने 'न' कहा। युवक निराश हो गया।

"कृपा करके मेरी डायरी में अपना पता लिख दीजियेगा।"

मैंने लिख दिया। वह बोला—"आपके पास कोई फ़ोटो है ?"

मैंने पूछा—"किसका ? कानन बाला का ?"

वह बोला—"नहीं, आपका।"

मैंने कहा—"क्षमा कीजियेगा, मेरे पास नहीं है। अपना पता दे दीजिये मैं भेज दूँगा।"

युवक उठकर चला गया। मैंने युवती की ओर देखा और पूछा—"भूख तो नहीं लगी है?"

यह बोली—"लगी है।"

मैंने कहा—"क्या खाओगी, कहो।"

वह बोली—"जो आप चाहें।"

मैंने कहा—"मैं कुछ नहीं चाहता।"

वह बोली—"तो मैं भी कुछ नहीं खाऊँगी।"

मैंने कहा—"कलकत्ता जाकर फिर आप क्या करेंगी?"

वह बोली—"जो आप कहेंगे।"

मैंने कहा—"आप अपने घर चली जाइये।"

वह बोली—"अब कैसे जाऊँ?"

"क्यों अब क्या हुआ?"

वह चुप हो गई।

"क्यों, आप क्या भागकर आई हैं? वह आप का भाई कहाँ है?"

वह फिर चुप हो गई।

मैंने कहा—"क्या बात है, ठीक-ठीक बताओ।"

उसने ग़ौर से मेरी ओर देखा और फिर चुप होगई।

इसी वक्त मैंने देखा पूर्व परिचित युवक एक रेशमी रूमाल में कुछ बाँध कर लाया और बोला—"क्षमा कीजियेगा, मैं इसे आपको भेंट देना चाहता हूँ।"

"क्या है यह ?"

"कैमरा है।" मैंने देखा कैमरा नया है और क़ीमती है। लोभ हो ही गया। कहा—"क्यों कष्ट करते हैं ?"

वह बोला—"नहीं मेरी बड़ी भारी इच्छा है।"

वह मेरे हाथ में कैमरा देकर चला गया।

कुछ देर तो मैं युवक के दिये हुए कैमरे को ग़ौर से देखता रहा, और फिर एक बार दूर पर बैठे युवक को ओर देखकर साथ वाली युवती को ओर देखने लगा। युवती बोली—"यह क्या है ?"

"कैमरा।"

"कैसा कैमरा ? क्या होता है इससे ?" वह बोली और उसने कैमरे को अपने हाथ में लेकर उसे अच्छी तरह देखना आरम्भ किया।

आश्चर्य से भर कर मैंने युवती से कहा;—"आप फ़िल्मों में काम करने आई हैं क्या—कैमरा नहीं जानतीं ?"

"क्या करते हैं इससे ?"

"आप सच कहती हैं आप कैमरा नहीं जानतीं ?" मुझे विश्वास न हुआ।

युवती का चेहरा शर्म से लाल हो गया। मेरा आश्चर्य फिर भी कम नहीं हुआ। मैंने फिर कहा—"आप को फ़िल्मों का नाम किसने बताया ?"

युवती शर्म से चुप थी—चुप ही रही। मैंने फिर पूछा:—"आप बोलती क्यों नहीं ?"

क्षण भर बाद मैंने फिर पूछा—"क्या हुआ आप को ?"

वह बोली—"कुछ नहीं ।"

मैंने कहा:—"फिल्मों में आप क्यों आना चाहती हैं, किसने भेजा है आपको ?"

वह बोली—किसी ने भी नहीं ।"

मैंने कहा—"फिर किसने भेजा ? क्यों आईं ?"

वह बोली—"मैं अपने आप आई हूँ, किसी को क्यों कहना था ? आपको शक क्यों हो रहा है ?"

"शक इसलिये हो रहा है कि आप जैसी भोली-भाली लड़की जिसको इतना भी पता नहीं कि कैमरा क्या चीज़ है, वह फ़िल्मों के पीछे दीवानी होकर इतनी दूर अकेली भाग कर चली आये, यह कैसे हो सकता है—आपने आज तक कोई फ़िल्म देखी भी है ?"

वह बोली—"दो-चार फ़िल्में देखी हैं । असल में मैं अकेली नहीं आई, किसी के साथ आई हूँ, आपसे झूठ क्या कहना—बात ये थी..." और वह चारों और देखने लगी ।

रात काफ़ी हो चुकी थी । हमारे कम्पार्टमेन्ट के सभी यात्री नींद में खर्राटे ले रहे थे । अगर कोई अभी जागा हुआ था तो वह हम्हीं दो थे और वह इसलिये थे कि हमें पता भी न था कि रात है या दिन ।

गाड़ी इसी बीच २।३ स्टेशनों पर खड़ी हो चुकी थी, इसका मतलब १।२ बजे रात का समय था ।

युवती जो कहना चाहती थी मैं समझ गया। उसके सौन्दर्य ने मुझे काफ़ी प्रभावित कर दिया था, और इसी का फल था कि भाभी जी के एकान्त आग्रह के होते हुए भी मैं दो-तीन स्टापेज होने पर भी अभी तक उनसे मिलने न गया था।

युवती के भोले चेहरे पर देख कर मैंने कहा—"क्या बात थी, बोलिये न; झिझकती क्यों हैं?"

वह बोली—"मैं एक लड़की के साथ आई हूँ। लड़की काफ़ी पढ़ी-लिखी है और गाना-बजाना भी जानती है। एक दिन लाहौर में कोई बम्बई का डाइरेक्टर आया था तो उसने लड़की को कहा था कि मैं तुम्हें बम्बई जाने पर बुला लूँगा। जब वह बम्बई गया तो उसने उसको बुला लिया। इसी बीच वह लड़की मुझसे भी बोली और हम तैयार हो गये। यहाँ आकर वह तो डाइरेक्टर के साथ ही चली गई थी, और ३।४ दिन तक जब होटल में नहीं आई, तब हमने उनसे कहा और उन्होंने आप से परिचय करा दिया।"

मैंने कहा—"तो तुम घर से भाग आई हो?"

वह बोली—"हाँ।"

मैंने पूछा—"शादी हो गई?"

वह बोली—"नहीं।

मैंने कहा—"यह रुपये कहाँ से आये?"

वह बोली—"अपने पास थे मेरे"

मैंने कहा—"और क्या है तुम्हारे पास?"

वह बोली—"कपड़े हैं बहुत सारे। बाकी जो कुछ भी है देख लीजिये, चाबी आपको ही को तो दे दी है।"

मैंने पूछा—"उस लड़की ने तुम्हें क्या बताया और समझाया था ?"

वह बोली—"उसने पहले तो कहा कि तुम बड़ी 'ब्यूटीफुल' हो, फिर बोली कि औरतों को घर में बैठ चक्की पीसना नहीं चाहिये, और आख़िर बोली कि फ़िल्मों में बड़े मज़े में दिन कटते हैं, चलो नौकरी तो मिल ही जायेगी—डायरेक्टर मेरा दोस्त है।"

मैंने कहा—"डायरेक्टर से उसने तुम्हें मिलाया था ?"

वह बोली—"नहीं, उसे तो मैंने देखा ही नहीं, देखने की कोशिश भी की मगर नहीं देख पाई। जाते वक्त लड़की कह गई कि—मैं लौट कर आऊँगी तब तुम्हें डायरेक्टर से मिलाऊँगी।"

मैंने कहा—"तुम जानती हो वह डाइरेक्टर कहाँ काम करता था ?

वह बोली—"हाँ, वह सिनेमा कम्पनी में काम करता था।"

"कौन सी ?"

"उसने कहा था सिनेमा-कम्पनी।"

"किसने ?"

"लड़की ने।"

"ओह : लड़की ! तुम...तुम तुम !" कह कर मैंने उसके दोनों कन्धों को झकझोरा, वह बेचारी सिकुड़ कर मेरी गोद में

अपना सिर डालने लगी, इसी समय देखा गाड़ी खड़ी है और बाहर "पान-सिगरेट" कहता हुआ आदमी एक ओर जा रहा है!

मैंने कहा—"तुम एक काम करो! सो जाओ या बैठी रहो, मैं भाभी जी से मिलकर आ जाता हूँ।"

वह बोली—"नहीं, इतनी रात को मैं अकेली यहाँ नहीं रह सकती—आप न जाइये, सवेरा होने पर जाइयेगा।"

मैंने कहा—"डर किस बात का—सो जाओ, मैं दूसरे स्टेशन पर आजाऊँगा—चलती गाड़ी में कुछ भय नहीं।"

मगर वह न मानी, नहीं बोली, "नहीं मुझे भी तब ले चलिये। आप अभी न जाइये।"

युवती पर मुझे दया तो आई किन्तु दया से ज़्यादा उसके आकर्षण ने मुझे भाभी के पास न जाने दिया और मैं चुपचाप पड़ गया। उससे कहा—तुम भी सो जाओ।" सुनते ही वह भी लेट गई।

सवेरा जब हो रहा था तो जिस स्टेशन पर गाड़ी खड़ी थी, वहाँ पर किसी कालेज या स्कूल की लड़कियों का एक दल का दल; जिसमें ८-१० लड़कियाँ थीं, हमारे कम्पार्टमेंट में आ बैठीं। कहना चाहिये, उन्हीं के हल्ले ने हमारी नींद खोली। मैं चौंक कर उठा, देखा, अपने सामने, आस-पास चारों ओर सभी युवतियाँ, और सभी के मुँह में एक जैसी हँसी।

मैंने अपने साथ वाली युवती को छिपे रूप से धक्का दिया, वह भी हड़बड़ा कर उठ बैठी। उसके उठते ही मैं हाथ मुँह धोने

बाहर चला गया। अन्दर आकर देखा, वे कालेज की लड़कियाँ पञ्जाबी युवती से पूछ रही हैं, मगर वह 'हाँ-हाँ' के सिवा और कुछ नहीं बोल पा रही है।

मैंने उनसे पूछा—"आप लोग कहाँ जा रही हैं?"

उनमें से एक ने उत्तर दिया—"जबलपुर।" और दूसरी ने पास आकर कहा "और आप लोग।"

मैंने कहा—"कलकत्ता।"

मेरे बिस्तरे पर विचार की ३-४ प्रतियाँ, और फ़िल्म इंडिया, चित्रपट, मिरर आदि कुछ पत्र पड़े थे—उन कालिजियेट लड़कियों ने एक-एक करके सभी उठा लिये और तीन-तीन लड़कियाँ ग्रुप बना कर एक-एक पत्र को पढ़ने या देखने लगीं। मैंने पञ्जाबी युवती से बोलना चाहा हाथ-मुँह धोलो और इसीलिये उसके मुँह की ओर देखा। बालसूर्य की अरुण किरणें उसके खुमारी भरे चेहरे को इतना आकर्षक बना रही थीं कि मैं उसके चेहरे पर से अपनी दृष्टि न हटा सका।

इसी समय, देखा मित्र महोदय बाहर से मुझे बुला रहे हैं। जबरन मुझे बाहर जाना पड़ा।

मित्र महोदय मुझे बाहर बुला कर ले गये। मुझे अच्छा न लग रहा था, किन्तु लाचारी थी। वे बोले—"आप की भाभी साहिबा नाराज हो गईं।"

मैंने कहा—"क्यों? क्या कसूर किया मैंने? मैं रात को आ नहीं सका, क्योंकि मुझे नींद आ गई थी।"

वे बोले—"यह तो ठीक है, मगर आप तो जानते हैं उनका स्वभाव। जो कहीं वह न हो तो फिर वे आपे में नहीं रहतीं।" और मित्र महोदय खड़े हो गये।

मैंने पूछा—"क्या कुछ कहती थीं?"

"कहती क्या थीं! वह तो कहती हैं—पञ्जाबिन ने अच्छा जादू डाला, उसे छोड़ने का जनाब का दिल ही नहीं चाहता।"

"तो क्या आपका भी यही विश्वास है?"

"मैं क्या कहूँ?" और मित्र महोदय फिर अपने कम्पार्टमेण्ट की ओर चलने लगे। मैं भी उनके पीछे-पीछे जैसे बड़ा भारी कसूरवार की तरह चलने लगा।

भीतर जाकर भाभी जी को देखा, ज़रूर नाराज़ हैं। और इस लिये मित्र महोदय को उन्होंने भेजा है।

"भाभी जी नमस्ते।"

"नमस्ते।" बहुत धीरे से भाभी ने कहा।

"तो आप नाराज़ हैं?" मैं जाकर भाभीजी वाले गद्दे पर ही बैठ गया। वे बोलीं—

"क्यों मैं नाराज़ होती!"

"इस लिये कि मैं आपकी आज्ञा का पालन न कर सका, और रात को ही नींद छोड़ कर यहाँ आपकी शरण में न आ सका।" मुझे भी कुछ रोष आ गया था।

"मैं भला आज्ञा देने वाली कौन होती हूँ! और फिर मेरी आज्ञा का मूल्य ही क्या?" मालूम हुआ जैसे भाभी जी अभी रो पड़ेंगी।

मैंने कहा—"बस भाभी जी ! यही तो बड़ा भारी दोष आप में है, किसी बात से पहले ही आप गाल फुला कर बैठ जाती हैं। यह भी तो आप नहीं देखतीं कि किसी का कोई कसूर भी है या नहीं ?"

वह बोलीं—"क्षमा कीजियेगा, मैंने क्या कहा आपको, आप क्यों सफ़ाई पेश कर रहे हैं—मैंने तो कुछ नहीं कहा।"

मैंने देखा मित्र महोदय मुस्करा रहे हैं। बॉय-चाय दे गया था। भाभी जी चाय तैयार कर रही थीं।

मैंने कहा—"देखिये, आपके मन में व्यर्थ का सन्देह घर कर गया है, असल में मैं रात को सो गया था, इसी लिये नहीं आ सका !"

उन्होंने कहा—"तो मैं कब कहती हूँ कि आप नींद खराब करके भी यहाँ क्यों नहीं आये। नींद भी वहीं आती है, जहाँ नींद का सामान होता है, यहाँ भला क्या था ?"

इसी वक्त देखा मित्र महोदय जान-बूझ कर दो-एक बार खाँस चुके हैं। मैं चक्कर में आ गया—ये सोने का सामान क्या बला है ! पूछा—"क्या मतलब आपका सोने के सामान से ? मैं समझ नहीं सका। भाभी जी आप भी इतनी सन्देहशील हो सकती हैं ?"

और मैं कह कर उठ पड़ा। भाई साहब बोले—"अरे अब बैठिये भी, चाय पी लीजिये।"

"नहीं मैं जाता हूँ।" मैं जाने लगा था कि भाभी ने स्वयं उठ कर, मुझे खींच कर बिठाते हुए कहा—"बैठो ! मेरे भाग्यों का

दोष है, किसी का क्या क़सूर! आपको देख कर, आप से मिल कर ज़रा दिल ख़ुशी रहता है, इसी लिये तुम इन दो दिनों में एक साथ रहते तो अच्छा रहता, इसीलिये कहा था, मगर आपको हम से बोलने-चालने में अच्छा नहीं लगता तो क्या किया जाय, कोई ज़ोर ज़बरदस्ती तो है नहीं।—क्षमा कीजिये आपको तक़लीफ़ हुई।" उन्होंने चाय मेरे हाथों में दी। क्या जाने क्यों भाभी जी की यह बात भी मुझे शान्त न कर सकी, किन्तु इसका मुझे कम अभिमान न हुआ। भाभी जी जैसी सुसम्पन्न परिवार की शिक्षिता स्त्री भी मुझसे बातें करने को तरसती हैं।

मैंने कहा—"अच्छा तो मैं जाता हूँ।"

भाभी जी के मुख पर जैसे कालिमा पोती हो, अभिमान पर जैसे धक्का लगा हो—बोलीं—"चाय नहीं पियेंगे?"

भाभी के करुण स्वर को मैं सुन न सका। चुपचाप पुनः बैठ गया, चाय पी ली।

पुनः उठते हुए मैंने कहा—बात यह है उधर सामान बिखरा हुआ है, कोई उठा न ले इसीलिये वहीं जाता हूँ। भाभी जी ने कहा—"फिर दूसरे स्टेशन पर आयेंगे?"

"देखा जायेगा।" कह कर मैं चल पड़ा। जल्दी-जल्दी में भागा, गाड़ी सीटी दे चुकी थी—चलती गाड़ी में मैं उछल कर भीतर पहुँच गया। कालेजियेट लड़कियाँ साथ वाली युवती को घेरे हुए हैं। सभी को इसकी खबर हो गई थी कि न्यू थियेटर्स में काम करता हूँ।

उनमें एक लड़की जो बोल-चाल में ज़्यादा तेज़ थी आकर बोली—"हम लोग काननबाला और सहगल से मिलना चाहेंगी, कृपा करके आप मिला देंगे। जब हम कलकत्ते आयेंगी ?"

मैंने कहा—"आप लोग तो जबलपुर जारही हैं ?"

दो-तीन लड़कियाँ एक साथ बोलीं—"नहीं, हम कलकत्ता भी जायेंगी, आप अपना एड्रेस दे दीजिये।"

"मैं अपना एड्रेस तब दे सकता हूँ, जब आप सभी अपना-अपना अलग-अलग एड्रेस मेरी डायरी में स्वयं लिखें।"

वे राज़ी हो गईं और आधे घण्टे तक हम लोगों का एड्रेसों का आदान-प्रदान होता रहा !

जिस लड़की को मैं ग़ौर से कई बार देख चुका था, और कई बार जिसके साथ मेरी आँखें चार होगई थीं, सब से अन्त में आकर उसने मेरी डायरी में अपना एड्रेस लिखा और मैंने उसकी डायरी में—वह बोली—"क्या इन एड्रेसों पर आप हमें चिट्ठी लिखेंगे।"

मैंने कहा—"शायद ज़रूरत पड़े।"

मुस्कराते हुए वह बोली—"मुझे बड़ी ख़ुशी होगी।"

मैंने पूछा—"आप ख़ास कोटा स्टेट में ही रहती हैं ?"

वह बोली—"हाँ, ख़ास स्टेट में ही, कभी आयें तो ज़रूर मिलियेगा।"

एकाएक मुझे याद आया, मेरे साथ की युवती कल रात को ही कहती थी भूख लगी है। मैंने फिर पूछा—"क्यों भूख लगी है ?"

वह बेचारी मुस्करा दी और कुछ न बोली,

वही कोटा वाली कालेज गर्ल बोली—"मालूम होता है, आप लोगों की नई-नई शादी हुई है?"

मैंने पूछा—"क्यों?"

"ऐसा दीखता है, आप लोग आपस में बोलते ही नहीं?"

मैंने कहा—"बात यह है कि रोज़-रोज़ तो बात करते ही रहते हैं, फिर इस वक्त क्या बात की जाय?"

वह बोली अच्छा यह बताइये, ये जो बादलों के सीन लिये जाते हैं, ये क्या असली बादल होते हैं या नक़ली?"

मैंने कहा—"कभी-कभी असली भी होते हैं और कभी-कभी नकली भी।"

वह बोली—"और जो एक्सीडेन्टस होते हैं?"

मैंने कहा—"सभी नकली, अगर असली हों तो अपनी जान देने के लिए कौन नौकरी करेगा?"

एक दूसरी लड़की, जो इन बातों में दिलचस्पी ले रही थी, बीच ही में बोली—"अच्छा मैंने एक पिक्चर देखी थी, उसका नाम था "लॉस्ट होराइज़न" उसमें जो बर्फ़ीले पहाड़ों के दृश्य थे वे क्या असली थे या उन्हें स्टूडियो में ही प्रस्तुत किया गया था?"

"दृश्य असली थे किन्तु उनमें मूवमेण्ट और डायलाग बैक प्रोजेक्शन से स्टूडियो में भरे गये थे।"

"हमने सुना है, अधिकांश स्टूडियो का एटमास्फेयर (वातावरण) गन्दा रहता है—क्या यह सच है?"

"नहीं, सभी स्टूडियो एक एक जैसे नहीं।"

"अच्छा, सभी न्यूथियेटर्स के चित्रों में प्रेम का राग क्यों गाया जाता है?"

"क्योंकि संसार प्रेम का राग ही सुनना पसन्द करता है।"

"क्या दुनिया यही चाहती है, कि लड़कियाँ लड़कों के लिये पागल बनी फिरती रहें, और हमेशा उनसे हार खाती हुई उन्हीं के गले में वरमाला डालने के लिये दीवानी बनी रहें?"

"और इसके सिवा लड़कियाँ क्या करेंगी?"

"वाह! लड़कियाँ क्या देश के किसी काम में सहायक नहीं हो सकतीं?"

"हाँ क्यों नही हो सकतीं, किन्तु होती नहीं, प्रेम का आलाप पहले वहीं से आरम्भ होता है।"

"यह बात बिल्कुल ग़लत है, प्रेम की डींग मारने वाले पुरुष होते हैं और चूँकि पुरुषों के हाथ में स्टूडियो है इसलिये वे वही दिखाते रहते हैं।"

"मगर जिन स्त्रियों के हाथ में स्टूडियो था उन्होंने भी तो कौन-सा स्त्रियों का राज्य गढ़ के दिखाया, उन्होंने भी तो प्रेम का ही रोना रोया?"

वह बोली—"हमारे ख्याल में स्त्रियों के हाथ में कभी भी कोई स्टू डियो नहीं रहा।"

मैंने कहा—"सविता देवी के हाथ में सुदामा प्रोडक्शन है, संगीत फ़िल्म नाम की एक कम्पनी जद्दन बाई ने खोली थी। उनके

चित्रों में भी स्त्रियों ने प्रेमिका का ही पार्ट अदा किया, और फिर जो 'नेचुरल' है उसे आप अकेली कैसे बदल सकती हैं ?"

युवती का मुँह लाल अवश्य हो गया था। किन्तु अभिमान की छाया अवश्य उसमें थी। बोली—"क्या 'नेचुरल' यही है कि स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन रह कर पेट भरें ?"

मैंने कहा—"अगर यह 'नेचुरल' न होता तो आज आपको स्त्रियों की तरफ़ से वकालत करने की नौबत न आती।"

वह बोली—"यह आपकी ज़बर्दस्ती है ?"

मैंने कहा—"जैसा समझिये, मगर मुझे ऐसा लगता है, जैसे आपने अपनी क्लास की किताबों के सिवा और कुछ नहीं पढ़ा ?"

वह बोली—"पुरुषों के काम की किताबों को पढ़ने की हमें ज़रूरत नहीं पड़ी।" वह चुप हो गई।

मैंने कहा—"मालूम होता है आप नाराज़ हो गई हैं ? क्षमा कीजिये आपको मेरी बातों से तकलीफ़ पहुँची।"

वह बोली—"मुझे अफ़सोस है कि आप जैसे व्यक्तियों के भी ऐसे विचार हैं—मुझे नहीं मालूम था।"

मैंने कहा—"आप से ज़्यादा अफ़सोस तो मुझे है कि आपने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि मैं आपके साथ बात करते-करते आप ही की बातों में डूब जाऊँगा, और कह बैठूँगा कि संसार भर की स्त्रियाँ सभी देवियाँ हैं और पुरुष उनके दास ?"

वह बोली—"मैंने तो यह नहीं कहा, मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती हूँ कि दोनों का दर्जा बराबर है और वही आप लोगों को अपनी फ़िल्मों में दिखाना चाहिये।"

मैंने कहा—"आपके कहने से है न दोनों का दर्जा बराबर, और अगर हो भी दोनों का दर्जा बराबर तो प्रेम से उस दर्जे में क्या दिक्कत आ पड़ी—प्रेम यह तो कहता नहीं कि कोई छोटा है, कोई बड़ा। फ़िल्में क्या बिगाड़ रही हैं आपका, स्त्री को स्त्री और पुरुष को पुरुष देखने में क्या आपको तकलीफ़ होती है ?"

मैंने देखा अब तक सभी लड़कियाँ हमारी बहस में दिलचस्पी ले रही हैं, दूर पर बैठी एक ने कहा—"आपको हम लोगों से हार खानी पड़ेगी, क्योंकि मेजोरेटी हमारी है।"

मैंने कहा—"मेरा सौभाग्य।"

वे सभी हँस पड़ीं। मुझे भी उनकी हँसी में सहयोग देना पड़ा।

गाड़ी की रफ्तार धीमी हो चली थी, स्टेशन करीब था। चारों ओर पहाड़ों की कतारें बड़ी भली लगती थीं। सभी उत्सुकता से स्टेशन के इन्तज़ार में थे—जल-पान का सामान होता, मैं भी यही सोच रहा था कि इनमें से एक जो अभी तक चुप थी अँग्रेज़ी में बोलीं "आजकल सबसे अच्छी एक्ट्रेस कौन है ?" वह चुप इसीलिये थी कि उसे शायद हिन्दी बोलना नहीं आता था। मैंने जवाब दिया - "जो प्रेम का सब से अच्छा पार्ट अदा कर सकती है।" कह कर मैंने कोटा वाली युवती के मुख पर नज़र

उठाई, वह अभी तक गुमशुम बैठी थी। मेरे उत्तर पर सभी हँस पड़ीं और मेरी ही तरह उसी की ओर देखने लगीं, उसे वास्तव में गुस्सा आ गया था। मैंने प्रश्न करने वाली से पूछा—"बता सकती हैं कौन है ?"

वह बोली—"मैं देविकारानी को पसन्द करती हूँ।

दूसरी बोली—"लीला चिटनिस सबसे अच्छी है।"

तीसरी बोली—"काननवाला के सामने मुझे कोई अच्छी नहीं लगती !"

वह पहले वाली युवती फिर बोली—"आप का क्या ख्याल है ?"

मैंने कहा—"जो आप समझती हैं।"

गाड़ी स्टेशन पर रुकी। मैंने अपने साथवाली पंजाबी युवती की ओर देखा, और देखते ही मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे मैं अपने को अपमानित-सा बोध करने लगा। इस वक्त वह अगर इन आई हुई युवतियों से घुल-मिल कर बातें करती तो न जाने क्यों मैं अपने मन में गर्व समझता। मैंने पूछा—"चाय पीयेंगी ?"

वह बोली—"आप तो बस पूछते ही हैं मँगाते कुछ भी नहीं !" मैं समझ गया बिचारी भूख से तड़प रही है।

गाड़ी खड़ी भी न हुई थी कि रेस्तराँ कार का बेयरा बाहर से पूछ उठा "बाबूजी, चाय ?"

अब अपने और उसी अकेली युवती के लिये चाय मँगाना तो असभ्यता होती, और इन सभी लड़कियों की चाय की दावत

मेरे लिये अपनी शक्ति से बाहर की बात थी, क्योंकि रेस्तराँ कार की चाय का दाम भी तो चौगुना देना पड़ता है। मैं कुछ सोच रहा था कि उनमें से एक लड़की बोली,—"इनसे न लीजिये, ज्यादा चार्ज करते हैं।"

पँजाबी युवती थी बहुत सभ्य और बहुत भली, वह सँतरे और केले खोलकर मुझे और मेरे साथ उन कालीजियेट लड़कियों को खिलाने लगी। खाने में हमें यह खयाल न रहा कि वह स्वयं भूखी है। औरों ने तो नहीं पर मैंने कहा—"तुम क्या आज का भी व्रत रखोगी, खाती क्यों नहीं हो, फिर कहोगी भूख लगी है।"

वह बोली—"आप खाइये, मैं खालूँगी।"

मैंने कहा—"खाओगी कब, जब हम सब चट कर जायेंगे।"

वह बोली—"तब क्या हुआ!"

मैंने कुछ छिले फल इससे छीन कर उसके मुँह में जबरन डाल दिये, और वह भी खाते-खाते बोली—"तो क्या इतने से ही भूख मिट जायेगी?"

धीरे से मैंने कहा—"रसिकता तो तुम में भी लगती है, कर सकोगी काम फ़िल्मों में!"

वह मुस्करा दी, मुझे अच्छा लगा।

गाड़ी चल पड़ी। खाना-पीना खतम करके जैसे ड्रिल के समय सभी सिपाही एटेन्शन हो जाते हैं, वैसे ही सभी लड़कियों ने अपनी अपनी डायरियाँ निकालीं और लिखने बैठीं। वातावरण

शान्त हो चला। मैं बारी-बारी सभी की ओर बड़ी उत्सुकता से देखता रहा। वही कोटा वाली लड़की बोली—"क्षमा कीजियेगा—इनका नाम ज़रा बताइएगा ?"

मैं सिटपिटा कर युवती की ओर देखने लगा—वास्तव में रामायण सारी पढ़ी किन्तु राम मरा या रावण यह पता न था—उसका नाम जानता ही न था। मैंने कहा—"पूछ लीजिये इनसे !"

वह बोली—"आप नहीं जानते !"

मैंने कहा—"जानता हूँ, पर कहना नहीं चाहिये !।'

वह बोली—"क्यों !"

मैंने कहा—"हमारे धर्मशास्त्र में लिखा है।"

वह बोली—"नहीं सच बताइये, मैं डायरी लिख रही हूँ।"

मैंने कहा—"क्या ?"

वह बोली—"वही आप लोगों की बातें !"

मुझे यह ख़याल आया कि जब डायरी ही ये सब लिख रही हैं तो अवश्य मेरा उल्लेख होगा। फिर क्या था, मैं अपने बारे में जानना चाहता था। मैंने पूछा "आप पहले बताइये आपने मेरे बारे में क्या लिखा ?"

वह बोली—"पीछे बताऊँगी, बोलिये न इनका क्या नाम है, बोलो बहन क्या नाम है—यशोधरा !"

वह बोली—"बड़ा अच्छा नाम है"

मैंने कहा—"अब बताइये क्या लिखा है आपने ?"

वह बोली—"अभी ? पीछे बताऊँगी !"

मैं चुप हो गया। आध घन्टे के बाद मैंने देखा-सभी अपनी अपनी डायरियों को समाप्त कर चुकी थीं।

मैंने सभी की ओर मुख़ातिब होकर प्रश्न किया—"क्या लिखा है आपने हमारे बारे में?"

वही कोटावाली लड़की बोली—"अपनी डायरी भी किसी को दिखाई जा सकती है—आप भी अच्छे हैं!"

मैं वास्तव में शर्मिन्दा हो गया, पर इसी वक्त मेरे दिमाग़ में एक बात आ गई... क्यों न अपनी डायरी लिखूँ! और मैंने अपनी डायरी निकाली और लिखना आरम्भ किया। कुछ ही क्षण बीते थे कि वही कोटा की युवती बोली—"क्या लिखते हैं?"

मैंने कहा—डायरी!

वह बोली—"आप भी लिखते हैं?"

मैंने कहा—"हाँ, आप लोगों का ही उल्लेख कर रहा हूँ।"

वह बोली, और साथ ही सभी बोलीं—"ज़रा बताइये, हम लोगों के बारे में लिख क्या रहे हैं?"

मैंने कहा..."यह डायरी है, अख़बार का पन्ना नहीं।"

लड़कियों को समझने में देर नहीं लगी कि यह मैं बदला ले रहा हूँ! वे सब बोल उठीं—"हम अगर बता दें तो आप भी बता देंगे?"

मैंने कहा—"हाँ!"

इसी समय बग़ल से एक महाशय सूट-बूटधारी वहाँ पर पधारे और आते ही फ़रमाने लगे—"आप लोग किसी सिनेमा पार्टी के आदमी हैं?"

मैंने कहा—"हाँ, कहिये ?"

वह बोला—"किस कंपनी में काम करते हैं आप ?"

सभी कालिजियेट लड़कियाँ आपस में एक दूसरे की ओर देख कर मुस्कराने लगीं, किन्तु प्रश्न का उत्तर तो मुझे देना था, और मैंने कहा—"सिनेटोन कम्पनी में।"

उन्होंने विना आश्चर्य के कहा—"अच्छा, आप लोगों का कोई खेल पहले निकला है ?"

मैंने कहा—"हाँ, निकला तो है, शायद आपने सुना कि नहीं—नाम है 'पिकनिक।'

वे बोले—"हाँ हाँ सुना क्यों नहीं—बड़ा अच्छा खेल था।"

सभी हँसने लगी थीं पर मैंने इशारे से रोक दिया। वे बोले, "साब ! आप लोगों का ही ज़माना है, क्या हमें नहीं भर्ती किया जा सकेगा ?"

मैंने कहा—"हमारे डाइरेक्टर नहीं हैं, नहीं तो आपको वे ज़रूर ले लेते !" कह कर मैं पुनः अपनी डायरी लिखने में व्यस्त हो गया। कोटावाली युवती उल्थी मार कर मेरी डायरी पढ़ने लगी।

मैंने कहा—"वाह, आप भी खूब, अपनी दफ़ा तो कहती हैं डायरी किसी को दिखाई जाती है और इधर ?"

वह बोली—"अब तो हम दिखायेंगे। आप भी पढ़ने दीजिये !"

मैंने कहा—"पहले आप !"

वे सब बोली—"पहले आप!"

मैंने कहा—"नहीं, पहले आप!"

आगन्तुक युवक न जाने क्या समझ रहा था, किन्तु पञ्जाबी युवती अभी तक न समझी कि क्या किस्सा है, इसलिये उसने पूछा—"क्या बात है?"

मैंने कहा—"कुछ समझ में नहीं आया?"

वह बोली—"नहीं तो!"

मैंने कहा—"आप घर चली जाइये, फ़िल्मों में आप से काम नहीं होगा—कुछ पढ़ना-लिखना आता है?"

वह बोली—"थोड़ी-सी उर्दू!"

मैंने कहा—"डायरी लिखने का मतलब समझती हैं?"

वह बोली—"जानती हूँ, डायरी में हिसाब लिखाजाता है।"

मैंने कहा—"भूख लगी है क्या?"

वह बोली—"आप मुझसे इतनी रूखी तरह क्यों बोलते हैं, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? आज मुसीबत में पड़ी हूँ इसलिये आप इतने ताने सुनाते हैं?"

मैंनेकहा—मैं ताने तो सुनाता नहीं, साफ़-साफ़ कहता हूँ!"

मैंने देखा कुछ लड़कियाँ हमारी बातों को ध्यान से सुन रही हैं, उन्हें हम पर कुछ सन्देह-सा होने लगा है। मैंने कहा—"कुछ खाने का इन्तज़ाम हो सकता है?"

एक लड़की बोली—"नेक्स्ट स्टेशन पर!"

मैंने कहा—"तब तो मैं भी कर सकता हूँ।"

ख़ैर, किसी तरह दूसरा स्टेशन आया और हम लोग अपना-अपना सामान छोड़ कर 'डाइनिंग कार' में गये। हम जानते थे कि तीसरी श्रेणी वालों के लिये डाइनिंग कार नहीं, उन्हें वहाँ जाने की इजाज़त नहीं, पर फिर भी हमने खाने का ऑर्डर दिया। कोई हमसे कुछ न बोला—बोलता भी क्या? मेरा हृदय धक् धक् ज़रूर कर रहा था कि कहीं भाभी जी और मित्र महोदय मेरी खोज कर रहे हों, और वे लोग वास्तव में खोज कर रहे थे।

जब हमारा खाना समाप्त हुआ था तब जबलपुर स्टेशन आ गया था। बम्बई मेल के रास्ते का यह स्टेशन सब से अच्छा है। इस जबलपुर में ही मेरे साथ के दल को उतरना था। इस शहर में मेरे मित्रों की कमी न थी किन्तु मैंने सूचना तो किसी को न दी थी कि कोई आता और मेरा स्वागत करता।

उतरते-उतरते कोटा वाली युवती ने कहा—"आप भी यहीं उतरिये। एक दिन में क्या हो जायेगा?"

तीव्र इच्छा होने लगी कि उतर पड़ूँ, कि इसी समय भाई साहब आते ही बोले—"हम एक दिन यहाँ रुकना चाहते हैं, आप न ठहरेंगे?"

मैंने कहा—"कहिये तो ज़रूर इस तीर्थ-स्थान पर उतरूँगा। मेरे साथ तो देख रहे हैं इतना बड़ा दल है।"

उन्होंने कहा—"उतरिये!"

और मैं पञ्जाबी युवती के साथ वहीं पर उतरा। अब हम लोग सभी मिला कर ३० आदमी थे, इतनी बड़ी बरात के लिये

किसी छोटे-मोटे होटल से तो काम न चलता। ताँगे वालों की सलाह पर हम लोग किसी होटल की ओर चले।

मैंने देखा—मेरे ताँगे में चार हैं, पञ्जाबी युवती और कोटा वाली भी उसी में है और वह बोली—

"एक बात पूछूँ, आपने झूठ क्यों कहा कि हम सब सिने-टोन कम्पनी में काम करते हैं, सिस्टर बुरा मान गई हैं।"

मैंने पूछा—"कौन हैं आपकी सिस्टर, वे क्या करती हैं?"

वह बोली—"वही लाल साड़ी वाली, वे हमारी गार्जियन हैं। उन्हें सिनेमा से नफ़रत है!"

मैंने कहा—"तो इसमें बुरा मानने की क्या बात है? यह तो एक सीधा-सा मज़ाक था, अगर मैं कहता कि मैं न्यू-थियेटर्स में काम करता हूँ तो वह झट से पूछता—कानन की तनख्वाह क्या है, उससे मिला जा सकता है या नहीं? मैं तो परेशान हूँ इसका उत्तर देते देते!"

वह बोली—"नहीं आपने सभी के लिये कहा न इसीलिये।"

मैंने कहा—"तो क्या सिनेमा में काम करना बहुत बुरी बात है?"

वह बोली—"बुरी तो है ही, आइमीन-वे समझती हैं?"

मैंने न जाने क्यों कह दिया—"वे बुद्धू हैं!"

वह बोली—"क्यों?"

मैंने कहा—"क्योंकि सिनेमा वाले से तो वे घुल-घुल कर बातें कर रही हैं। ख़ैर, उन्हें नफ़रत भी है तो क्यों, क्यों मेरा एड्रेस

उन्होंने नोट किया, क्यों अपना एड्रेस मुझे दिया ? वे हम से नफ़रत करती हैं तो हम उनसे डबल नफ़रत करते हैं, वे हमसे बोलने के भी क़ाबिल नहीं हैं। हम आप लोगों के साथ होटल में भी नहीं रहेंगे।"

ताँगे वाले ने एक विशाल होटल के दालान में ताँगा खड़ा किया—सभी ताँगे खड़े हो गये। "यही होटल है।"

मैंने कहा—"आप उतरिये, हम दूसरी जगह जायेंगे। हम यहाँ आप लोगों के साथ नहीं रहेंगे।" गुस्से से मेरा मुख लाल हो गया था।

वह बोली—"देखिये आप ऐसा न कीजिये, नाराज़ क्यों होते हैं, मैंने तो एक साधारण-सी बात कही है।"

उसी गुस्से में मैंने कहा—"ठीक है आप उतरिये—चलो टाँगे वाले दूसरे होटल में।"

वह बोली—"नहीं, आप नहीं जा सकते।"

मैंने उत्तेजित होकर कहा—"चलो ताँगे वाले।"

तब तक सभी उतर चुके थे। मित्र महोदय और भाभी जी ने हमारे पास आकर कहा—"क्यों, उतरते क्यों नहीं हैं ?"

चुपके से कोटा वाली युवती बोली—"मैं विनती करती हूँ, आप उतरिये।"

मैंने कहा—"भाभी जी, हम यहाँ न रहेंगे, दूसरे होटल में जायेंगे।"

मित्र महोदय ने कहा—"क्यों क्या बात है ?"

कोटा वाली युवती ने कहा—"कुछ नहीं, यहीं रहेंगे।"

इसी वक्त सभी लड़कियाँ आईं—ताँगा घिर गया—सभी बोलीं—"क्या बात है, उतरते क्यों नहीं हैं?" सिस्टर ने भी कहा।

मैंने कहा—"आप लोगों के साथ हमारा ठहरना ठीक नहीं—हम सिनेमा वाले हैं—हमसे आप लोगों को नफ़रत है न?"

सिस्टर बोली—"कौन बोलता है, आपको मालूम होना चाहिये कि हमें तो मिशन गर्ल्स स्कूल में ठहरने का निमन्त्रण मिला है, फिर भी हम लोग आपके लिये यहाँ होटल में आये हैं—क्या नफ़रत है इसलिये?"

पञ्जाबी लड़की बोली—"उतरिये न।"

मैं उतर गया—सामान भीतर गया। और मैं जाते ही एक चारपाई पर लेट गया।

भाभी जी ने आते ही कहा—"बाबू साहब खिसकना चाहते थे किसी और ही मतलब से। यहाँ भी तो वह मतलब हाथ आयेगा ही।"

मैं विक्षुब्ध हो उठा।

मैंने कहा, "भाभी जी! आपको हरवक्त मज़ाक ही सूझता रहता है। किसी की तबियत कैसी है इसे आप देखती नहीं।"

वे बोलीं—"क्यों क्या हो गया?" और उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा और चौंक कर बोलीं—"अरे आपको तो बुखार है?"

मैं चुप था। भाभी जी बाहर जाकर सभी को बुला लाईं। सभी एक तरफ़ से मुझे देखने लगीं। सिस्टर ने एक गोली निकाली और कहा इसे खा लीजिये, पानी का गिलास भी सामने रख दिया।

मैंने कहा—अभी आप लोग अपना काम कीजिये, मुझे अकेला छोड़ दीजिये! सिस्टर ने कहा—"ठीक है!"

सभी बाहर चले गये। पञ्जावी युवती वहीं पर बैठी रह गई। वह बोली—"आपको बुखार क्यों हो गया?"

मुझे युवती पर दया आ गई—मैंने कहा—"यों ही! चिन्ता न करो, ठीक हो जायेगा! जब कभी मुझे गुस्सा आता है तो बुखार हो जाता है।"

वह बोली—"क्या आपको मुझ पर गुस्सा आया है? मैं हाथ जोड़ती हूँ मुझे क्षमा कीजियेगा।"

उस युवती का भोलापन मूर्खता की सीमा को पार कर चुका था। मेरे जीवन में सब से बड़ी वेदना यदि कोई है तो यही है कि या तो मुझे सङ्ग मिला नितान्त मूर्खों का, या फिर आशा से अधिक चालाकों का। युवती को फिर से यह समझाना था कि मुझे गुस्सा क्यों आया था! इसी असह्य वेदना का भार लिये मैंने युवती का हाथ अपने हाथ में लिया और कहा—'तुम जाओ और स्नानादि करो, मैं ठीक हूँ!'

वह चली गई। भाई साहब आए, मेरी नाड़ी देखकर चले गये, मेरी आँखें उस वक्त बन्द थीं। क्षण-भर बाद जब कोई मेरे ऊपर ओढ़ना डालने लगा, तो आँखें खुलीं और देखा सिस्टर के साथ कोटा वाली युवती मेरी परिचर्या में है। सिस्टर बोली—"आपने गोली नहीं खाई?"

मैंने कहा—"लाइये।" और कोटा वाली युवती गोली और पानी का गिलास लाकर खड़ी हो गई। मैंने पानी के साथ गोली को हलक के नीचे उतार लिया। सिस्टर चली गईं। कोटा वाली युवती ने कहा—"आपको क्यों बुख़ार आया?" मैंने कहा—"आप के कारण।"

वह बोली—"कैसे?"

मैंने कहा—"आपकी बातें ही ऐसी थीं कि बुख़ार न आता तो क्या होता?"

वह बोली—"अच्छा क्षमा कीजियेगा, मैंने आपको कष्ट दिया।" और वह चली गई। मुझे नींद आने लगी, और मैं सो गया। जिस वक्त मेरी आँखें खुलीं उस वक्त सवेरा हो चुका था। बुख़ार भी उतर गया था। किन्तु उन सब लोगों की इच्छा थी कि मुझे अभी बीमार रहने दिया जाय। कोई कहता दूध पीजिये, कोई कहता साबूदाना, कोई कहता कुछ नहीं।

मगर मैंने कहा—"मैं रोटी खाऊँगा" और मैं उठ कर बाथरूम में चला गया। बाकायदा स्नान करके मैं लौटा और कहा—"अब बोलिये आप क्या चाहते हैं?"

वे सब के सभी मुझे जैसे बलि का बकरा बना रहे थे, इस लिये बोले—"आप आज खाना न खाइये और दिन भर आराम कीजिये। कल सारा जबलपुर देख लिया जायेगा और परसों यहाँ से कलकत्ता रवाना हो जायेंगे।"

मैंने कहा—"अच्छा आप लोग अपना-अपना काम निपटाइये फिर देखा जायेगा।"

मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि आज ही यहाँ से रवाना हो जाना चाहिये, और मैं उन लोगों के जाते ही अपना बिस्तर ठीक करने लगा। पंजाबी युवती पूछती ही रही कि "क्या करोगे, आज ही जाना है?"

मैं बिना उत्तर दिये अपना काम करता गया, अन्त में वह भी सहायता देने लगी, और वह बोली—"हम लोग किसी और होटल में चलें तो अच्छा हो।"

मैंने कहा "क्यों?"

वह बोली—"इन लोगों के साथ अच्छा नहीं लगता। जाने क्या-क्या बोलते रहते हैं?"

मैंने कहा—"अच्छा, तो चलो आज ही हमलोग कलकत्ते के लिये चलें, पर हाँ, तुम कलकत्ते में रहोगी कहाँ?"

वह बोली—"क्यों तुम्हारा घर क्या हुआ?"

मैंने कहा—"मैं···मेरा घर···अच्छा, मगर वहाँ भी तुम्हें ऐसे आदमी मिल सकते हैं जो तुम्हें जाने क्या-क्या कहते रहेंगे। फिर क्या करोगी?"

वह बोली—"वहाँ तो गरज के लिये सब करना पड़ेगा!"

मैंने कहा—"अच्छा तो तुम अपनी गरज के लिये सब कुछ कर रही हो?"

वह बोली—"नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारी बात दूसरी है।"

मैंने कहा—"बात दूसरी हो सकती है, किन्तु तुम्हारी फजीहत तो होगी न!"

वह फिर बोली—"तुम हर बात में मुझे सताते रहते हो! मैंने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा?"

आश्चर्य से मैंने उसके रुआंसे मुँह पर देखा और बिस्तर बाँधना छोड़ उसके दोनों कन्धों पर हाथ रख के बोला, "मैंने तुम्हें क्या सताया है?"

उसके आँसू आ गए, मेरा गुस्सा समाप्त हो गया। इस कमजोरी के लिये मुझे न जाने कितनी बार पछताना पड़ गया है। मैं आँसुओं से अस्थिर हो जाता हूँ, ये आँसू मेरे जीवन में इतनी भयंकरता से पेश आये हैं कि कभी कभी तो मैं यह भी भूल जाता हूँ कि आँसुओं के निकालने से लोग सुखी होते हैं या दुखी। मैंने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—"रोती क्यों हो? मैं वचन देता हूँ अब तुम को कुछ न कहूँगा!"

रोते-रोते ही वह बोली—"मैं मूरख अभागिन हूँ तो क्या इतना भी नहीं समझती कि किसका खयाल मेरे लिये क्या है? तुम ने जिस दिन से मुझे देखा है तब से ताने पर ताने सुनाते आ रहे हो, क्या मेरे कलेजा नहीं है?"......कुछ क्षण वह चुप रही। मैं स्थिर दृष्टि से उसे देखता रहा। वह फिर बोली—" आप ठुकरा दीजिए कोई बात नहीं। मैं भीख माँग कर खालूँगी—मेरे भाग में ही ऐसा था!"

उसने कह तो दिया, किन्तु मेरे हृदय में जो खलबली मच गई, उसका वह शायद अनुमान नहीं लगा सकी, किन्तु शायद इस तरह की युवतियाँ युवकों के हृदय पर असर डालने वाली बातों को अच्छी तरह जानती हैं, और जब युवकों के सामने इस तरह की घटनाएँ उपस्थित होती हैं तो उन्हें सभी प्रकार के संघर्षों को सहने के लिये तैयार होना पड़ता है । मैंने भी यह निश्चय कर लिया था कि मुझे इस युवती के लिए अब जो कुछ भी करना पड़े करूँगा। और मैं इस निश्चय को उसके पास प्रकट करने वाला था ही कि भाभी जी का दौरा हुआ।

आते ही बोलीं—"अरे क्या हो रहा है?"

मैंने कहा—"मैं जा रहा हूँ।"

भाभी जी के प्रश्न का उत्तर था—"मैं जा रहा हूँ।"

और अब उन्हें क्या चाहिये था, बोल बैठीं—"सभी सिनेमा वाले ऐसे ही होते हैं!"

"कैसे?" मैंने पूछा।

"आप जैसे।" वह बोलीं।

"क्यों मैंने क्या किया?" गुस्से में मैंने कहा।

"मेरी तरफ़ से कुछ कीजिये, मुझे क्या?"

"क्या किया मैंने?" उत्तेजित होकर मैंने फिर कहा।

बड़ी नर्मी से भाभी जी बोलीं—"एक दिन ठहर जाते तो क्या हो जाता?"

मैंने कहा—"मेरा नुक़सान हो जाता—आपका मुझ पर सन्देह क्या है. यह बताइये। क्या आपका ख़याल है सभी सिनेमा वाले..." और उन्होंने बात काटकर कहा—"कुछ नहीं क्षमा कीजिये; चलिये हम भी चलते हैं, आप बहुत जल्द नाराज़ हो जाते हैं, ओफ़! इतना गुस्सा?"

और भाभी जी जाते वक्त पञ्जाबी युवती से यह कहती गईं कि जल्दी तैयार हो जाओ और खाना भी खालो, चलेंगे अभी।

और वे चली गईं।

मैंने देखा पञ्जाबी युवती आँसू गिरा रही थी, शायद इस लिये कि उसे हर समय कुछ न कुछ ताना सुनना पड़ता है। मैंने उसे अपने पास बिठाया, और पूछा—"क्यों क्या हुआ?"

वह बोली—"कुछ नहीं।"

मैंने खाने का आर्डर दिया, और बाहर जाकर देखा कौन क्या कर रहा है। सभी कालेजियेट छात्राएँ अपनी-अपनी डायरियाँ लिखने में व्यस्त थीं। कोटा वाली युवती से मैंने कहा—"हम जा रहे हैं, आज चार बजे वाली गाड़ी से।"

वह बोली—"क्यों?"

मैंने कहा—'काम ज़रूरी है।'

वह बोली—"हमारे साथ घूमने नहीं चलेंगे?"

मैंने कहा—"बुख़ार से उठा हूँ अभी कैसे चलूँ?"

इसी वक्त भाभी जी ने कहा—"आइये खाने को।"

मैं जाने लगा; कोटा वाली युवती जैसे कुछ निराशा से देखने लगी। मैं भाभी जी के कमरे में चला गया। खाना रक्खा था, पंजाबी युवती और मित्र महोदय बैठे थे। मैंने भाभी जी के कान में कहा—"उस कोटा वाली लड़की को भी बुला लीजिये—हमारे साथ खा लेगी। उसे मैंने काफ़ी तंग किया है—और भाभी जी उसे बुलाकर ले आईं। खाते-खाते दो-बार हम दोनों ने एक दूसरे को देखा, मुझे भी खाने में जितनी अरुचि लगती थी उसे भी मैं वैसा ही देख रहा था।

भाई साहब (मित्र-महोदय) ने पूछा—"आप क्या आज ही जायँगे ?"

मैंने कहा, "जी हाँ !"

वे बोले—"इनको भी ले जायँगे ?"

मैंने कहा—"हाँ।"

कोटा वाली युवती आश्चर्य से बोली—"तो इन्हें क्या यहीं छोड़ जायेंगे ?"

युवती बोली—"भाई साहब कहते हैं न, इसीलिये।"

भाभी बोलीं—"वे तो इसी लिये कहते हैं कि……" और इसी वक्त मैंने भाभी जी को इशारा किया कि वे लड़की का असली परिचय न दें; और भाभी जी ने बात बदल कर कहा—"इन दोनों की आपस में आजकल बनती नहीं।"

कोटावाली युवती बोली—"पुरुष इसके कारण हैं !"

मैंने कहा—"स्त्रियाँ विरोध की जड़ हैं।"

भाभी बोलीं—"और पुरुष तो जैसे दूध के धोये हैं।"

मैंने कहा—"बेशक!"

कोटा वाली युवती बोली—"अपनी तारीफ़ पुरुष ही करते हैं।"

मित्र महोदय ने कहा—"इसलिये कि लड़कियाँ पुरुषों की तारीफ़ नहीं करतीं। किन्तु पुरुष हमेशा लड़कियों की प्रशंसा किया करते हैं।"

इस पर मुझे हँसी आ गई! मैंने देखा पंजाबी युवती भी हँस रही है। उसकी हँसी ने मेरी सभी भावनाओं को बदल डाला। मैं अपने को वास्तव में खुशनसीब समझने लगा। साथ ही मुझे सन्देह होने लगा कि क्या मैं इस खुशनसीबी का उपयोग भी कर सकूँगा या नहीं। मैं उस पर से अपनी आँखें न हटा सका। वह शर्मा गई।

मैंने देखा कोटावाली युवती के चेहरे पर लाली दौड़ गई है, वह भी कुछ नहीं बोली। खाना खत्म हो चुका था।

भाई साहब ने कहा—"भाई, जब यहाँ चार बजे तक रहना ही है, तो क्यों न थोड़ा घूम-घाम आया जाये।"

मैंने कहा—"मैं तो नहीं जा सकूँगा। आप लोग सभी चार बजे से पहले तक लौट आइये।" और मैं अपने कमरेमें चला गया।

कुछ ही क्षण में देखा तमाम छात्रायें और भाई साहब तथा भाभी जी सैर करने को निकल पड़ी हैं। पंजाबी युवती और कोटा

वाली युवती नहीं गईं ! मैंने दूसरे कमरे में जाकर उनसे पूछा—"आप दोनों क्यों नहीं गईं ?"

कोटा वाली युवती बोली, इस लिये कि मेरे सिर में दर्द है, और इन्हें इस लिये नहीं जाने दिया कि आपकी देख-भाल कौन करेगा ?"

मैं हँस पड़ा—"देखभाल" कह कर मैं वहीं पर बैठ गया। कुछ क्षण वातावरण शान्त रहा। फिर मैंने कहा—"अगर आपके सिर में सचमुच दर्द है तो मैं दवा ला दूँ—मेरे पास है !"

वह बोली – "सचमुच का क्या मतलब ?"

दृढ़ता से मैंने कहा—"मतलब-अतलब मैं सब समझता हूँ। आप लोगों के सिर का दर्द मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

युवती चुप हो गई। मैंने फिर कहा—"जानती हैं हम लोग नाड़ी पहचानते हैं, बिना देखे ही।" और मैं अपने कमरे में आ गया। कुछ देर बाद वे दोन ही वहाँ आ गईं। कोटा वाली युवती बोली "दीजिये क्या दवा है आप के पास ?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। वह फिर बोली—"एक बात कहना चाहती हूँ—कल के लिये मुझे क्षमा कर देंगे ?"

अब मैं अगर 'ना' करता तो व्यर्थ में बहस बढ़ती इसलिये मैंने कहा—"अच्छा क्षमा करता हूँ ! बस ?"

किन्तु मैंने देखा वह तब भी प्रसन्न नहीं हुई, और चुपचाप वहाँ से चली गई। मुझे कष्ट हुआ, किन्तु मैं क्या कर सकता था। चुप रहा। पंजाबी युवती अपनी भोली-सी सूरत लेकर वहीं पर

बैठ गई। और मैं लेट गया। क्षण भर बाद ही मुझे नींद आ गई! और न जाने किन कल्पनाओं में विभोर हो गया।

जब मेरी नींद खुली तो मालूम हुआ कि पंजाबी युवती ने मुझे उठाया है, और चार बजने वाला है। भाई साहब आदि अभी नहीं आये। बिस्तर आदि सभी कुछ बँध कर तैयार था और मैंने 'ब्वाय' बुला कर कहा कि सामान ताँगे में रखो।

हमारा समान ताँगे में रखा जा चुका था। भाई साहब का पता नहीं था। होटल का बिल चुका रहा था कि कोटा वाली युवती ने आकर हाथ में एक मोटा सा लिफ़ाफा दिया जिससे सुगन्ध आ रही थी। वह बोली—"इसे रास्ते में पढ़ लीजियेगा!—अच्छा नमस्ते!" इतना कह कर वह चुपचाप चली गई और हम दोनों भी चल दिये।

उस दिन स्टेशन पर मुझे जो आश्चर्य हुआ वह मेरे जीवन के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। बम्बई मेल के जिस डिब्बे में हम बैठे, उसी में एक पंजाबी नौजवान को बैठा हुआ पाया, और बैठते ही मेरे साथ वाली पंजाबी युवती की ओर बड़े आश्चर्य से देखते पाया। मैं अकचका गया। वह युवक बोला—"नमस्ते जी!"

मैंने उत्तर में "नमस्ते" कहा। युवती पंजाबी में उससे बोली—"मेरी जान बचाकर लाये हैं ये; नहीं तो न जाने मेरा क्या हाल होता।' और वह उससे चुपके से कुछ बोली। युवक मेरे पास आकर बोला—"अच्छा आप न्यूथियेटर्स में रहते हैं। ये मेरी बीबी

हैं, एक औरत इन्हें भगाकर ले गई । मैं भी बम्बई गया था और ख़ाली हाथ लौट रहा था कि भगवान की दया से इन्हें यहाँ देखा।

"आप की बीबी ?"

"जी हाँ !"

"मगर इन्होंने तो कहा कि मेरी शादी नहीं हुई ?" और मैं उस युवती के मुँह पर देखने लगा। युवती मुस्का दी। सारे मुख पर उसके लालिमा छा गई थी।

युवक बोला—"अजी इसकी बात छोड़िये, इतनी भोली लड़की है कि कुछ जानती ही नहीं। मुझे तो इस पर दया आती है।"

मैंने कहा—"अच्छा हुआ !' और युवती की तरफ़ मुख़ातिब होकर मैंने कहा—"आप इनके साथ जायँगी न !" वह बोली 'हाँ'! मैंने कहा—"बस अब मेरा काम हो गया।" और मैंने उनका पर्स निकाल कर उन्हें दे दिया और कहा—"चिट्ठी लिखते रहियेगा !"

गाड़ी चल रही थी। मैं कोटावाली युवती की चिट्ठी पढ़ रहा था। वे दोनों आपस में बातों व्यस्त थे।

रात को मुगलसराय स्टेशन पर जब वे बम्बई मेल से पंजाब वाली ट्रेन में जाने के लिए उतरे तो युवती सम्भवतः अपने स्वामी की आज्ञा पाकर मुझ से विदा लेने आई, हाथ जोड़कर बोली—"आपको मैंने बहुत सारी तकलीफ़ दी है माफ़ी चाहती हूँ, मुझे याद रखियेगा। मैं अपनी ज़िन्दगी भर आपको याद रखूँगी।" रऔ

वह मेरे पैरों पर हाथ लगाने ही वाली थी कि मैंने उसके हाथ पकड़ लिए, देखा उसकी आँखों में आँसू छलछला आये हैं। मेरी आँखों में भी आँसू आगये थे।

मैंने कहा—"नहीं, कोई तकलीफ़ नहीं दी तुमने, मगर ये तुम्हें कुछ कहेंगे तो नहीं?"

"नहीं, वे बड़े अच्छे आदमी हैं। मैंने सभी बातें बतादी हैं।"

उसके हाथों को हाथ में लेकर मेरी तृप्ति की सीमा न थी। मैंने कहा—"तुमने मुझे माफ़ कर दिया है।"

"किस लिए!"

"यही ताने सुनाने के लिए?"

"नहीं, उन्हीं तानों को लेकर मैं ज़िन्दगी-भर आपको याद किया करूँगी, और बाकी आपकी निशानी है क्या मेरे पास?"

मैंने अपने हाथ की अँगूठी निकाल कर उसी वक्त उसके हाथ में देते हुए कहा—"अब माफ़ कर देना।"

उसने जल्दी से हाथ छुड़ाया और पैर छूकर भाग गई।

बाहर से ही उसके स्वामी से भी आख़िरी नमस्ते हुआ और हमारी गाड़ी चल पड़ी।

बहुत देर तक मैं प्लेटफ़ार्म की तरफ़ देखता रहा, और जब एकदम ही कुछ न दिखाई दिया तो मैंने खिड़की से सिर भीतर किया, देखा कोटा वाली युवती की २० पेज की चिट्ठी अभी मैं समाप्त नहीं कर सका हूँ। और फिर मैं उसी में तल्लीन हो गया।

कोटा वाली युवती की चिट्ठी में क्या लिखा था इसे जानने की उत्सुकता आप लोगों के मन में अवश्य होगी, किन्तु उसने अपनी चिट्ठी में सब से पहले ही निम्न वाक्य लिखा है—

"भाई, मेरा एक अनुरोध रख लीजियेगा—इस चिट्ठी की बातें सिवाय अपने मन के अन्य किसी पर ज़ाहिर न कीजियेगा। मैंने आप को 'भाई' करके सम्बोधन किया है, क्योंकि मेरा कोई भाई नहीं है, मेरा सौभाग्य नहीं था कि मैं आपके मुख से 'बहन' सम्बोधन सुन पाती। जब तक हम साथ थे मुझे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। मेरा अन्तर स्वीकार कर रहा है कि आप मुझे बहन के रूप में ग्रहण करके मेरी अन्तर्वेदना को अवश्य सुनेंगे और उसे गुप्त रखेंगे।"

इस अवस्था में मेरा कर्तव्य हो जाता है कि उस अभागिन बहन की चिट्ठी को गुप्त ही रखूँ और और उसे सलाह दूँ कि वह सिनेमा-क्षेत्र में आने का विचार भी मन में न लाय और अपने उस अभिभावक मामा के वासना-युक्त क्रोड़ से छूटने के लिये, अपने उस प्रेमी युवक से चुपचाप शादी करले। किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि जिस मामा ने चाहे वह दूर के रिश्ते का ही क्यों न हो—उसे पाला और पढ़ा-लिखा कर यहाँ तक पहुँचाया है—उसके प्रति मन में घृणा न लाये, अपितु मानव-जीवन की इसे एक कमज़ोरी समझ कर उसे क्षमा करते हुए उसके प्रति सदा सदय व्यवहार करे—ईश्वर दोनों की सहायता करेगा।

इन्हीं विचारों में डूबता-उतराता मैं दूसरे दिन ३ बजे हावड़ा स्टेशन पर आ लगा। और फिर मेरा जीवन कलकत्ते के संघर्षशील वातावरण में पहले की तरह घुल-मिल गया।

समाप्त
